बौद्ध धर्म क्या कहता है ?

•

श्रीकृष्णदत्त भट्ट

•

सर्व सेवा संघ प्रकाशन

द्वितीय . फरवरी, १९६५ ५,०००
तृतीय . सितम्बर, १९६८ : ५,०००
कुल प्रतियाँ १३,०००
मुद्रक विश्वनाथ भार्गव,
मनोहर प्रेस,
जतनवर, वाराणसी
मूल्य ७५ पैसे

Title : BAUDDHA DHARMA KYA KAHATA HAI ?
Author : Shrikrishna Datta Bhatta
Subject : Religion
Publisher : Secretary,
Sarva Seva Sangh,
Rajghat, Varanasi
Edition : Third
Copies : 5,000; September, '68
Total Copies : 13,000
Price : 75 Paise

प्र का श की य

करुणाके साक्षात् अवतार थे भगवान् बुद्ध। प्राणी-मात्रके प्रति अनन्य करुणा भरी हुई थी उनके हृदयमे। उनका जीवन और उनकी वाणी युग-युगतक लोगोंको करुणाका पवित्र सन्देश देती रहेगी।

हमारी 'धर्म क्या कहता है?' पुस्तक-मालाकी यह छठी पुस्तक है। इस मालामें १२ पुस्तकें हैं, जिनमे वैदिक, जैन, पारसी, यहूदी, ताओ, कनफ्यूश, ईसाई, इस्लाम तथा सिख धर्म आदिका विवेचन किया गया है।

बौद्ध धर्मके ही नहीं, सभी धर्मोंके मूलमें सत्य, प्रेम और करुणाकी त्रिवेणी प्रवाहित हो रही है। हम मानते हैं कि इस त्रिवेणीमे जो कोई निमज्जन करेगा, उसका कल्याण हुए बिना न रहेगा।

अ नु क्र म

: १ :

"सिद्धार्थ, यह शिकार मेरा है, मुझे दे दो !"

"भाई, मैं इस हसको तुम्हे नही दूँगा ।"

"क्यो ?"

"तुम इस हंसको मार रहे थे भाई, मैने इसे बचाया है । अब तुम्ही बताओ कि इसपर मारनेवालेका हक होना चाहिए कि बचानेवालेका ?"

देवदत्त था राजकुमार सिद्धार्थका चचेरा भाई । उसने सिद्धार्थके पिता राजा शुद्धोदनसे शिकायत की । शुद्धोदनने सिद्धार्थसे कहा : "बेटा, यह हस तुम देवदत्तको क्यो नही दे देते ? आखिर तीर तो उसीने न चलाया था ?"

"सो तो ठीक है पिताजी ! पर यह तो बताइये कि आकाश-मे उड़नेवाले इस बेकसूर हंसपर तीर चलानेका ही उसे क्या अधिकार था ? बेचारे हंसने देवदत्तका कुछ बिगाड़ा तो था नही, फिर उसने इसपर तीर क्यो चलाया ? क्यो उसने इसे घायल

किया ? मुझसे इस दु:खी प्राणीका दु:ख नही देखा गया । इसलिए मैंने तीर निकालकर इसकी सेवा की । इसके प्राण बचाये । हक तो इसपर मेरा ही होना चाहिए ।''
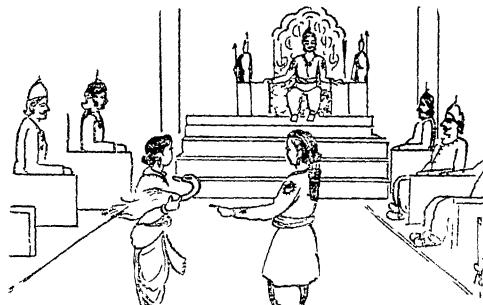
राजा शुद्धोदनको सिद्धार्थकी बात जँची । बोले : ''ठीक है तुम्हारा कहना । मारनेवालेसे बचानेवाला ही बडा है । इसपर तुम्हारा ही हक है ।''

देवदत्तने अपनी भूल मान ली । सिद्धार्थने हंसको छोड दिया । वह आकाशमे उड़ गया ।

ऐसा था कपिलवस्तुका राजकुमार सिद्धार्थ । बचपनसे ही उसके हृदयमे हर प्राणीके लिए करुणा भरी थी ।

जन्म

कपिलवस्तु और देवदहके बीच नेपालकी तराईमे नौतनवा स्टेशनसे ८ मील पश्चिम रुक्मिनदेई है । कोई तीन हजार साल पहले वहाँ एक वन था, जिसका नाम था लुम्बिनी । ईसासे ५६३ साल पहले जब कपिलवस्तुकी महारानी महामाया देवी अपने नैहर देवदह जा रही थीं, तो उस लुम्बिनी-वनमे ही

गौतमका जन्म हुआ। नाम रखा गया सिद्धार्थ। जन्मके सात दिन बाद ही मॉका देहान्त हो गया। सिद्धार्थकी मौसी गोतमीने उनका लालन-पालन किया।

बचपन

बचपनसे ही सिद्धार्थमे करुणा भरी थी। उससे किसी भी प्राणीका दु ख देखा नही जाता था।

सिद्धार्थने गुरु विश्वामित्रके पास वेद और उपनिषद् तो पढ़े ही, राज-काज और युद्ध-विद्याकी भी शिक्षा ली। कुश्ती लड़नेमें, घुडदौडमे, तीर चलानेमे, रथ हॉकनेमे कोई उसकी बराबरी न कर पाता। परन्तु घुडदौड़मे घोड़े दौडते और उनके मुँहसे झाग निकलने लगता, तो वह उन्हें थका जानकर वही रोक देता और जीती हुई बाजी हार जाता। खेलमे भी किसीको हराना और उसका दु.खी होना उससे न देखा जाता। उसके बजाय खुद हार जाना उसे पसन्द था।

विवाह

सिद्धार्थका जन्म शाक्य वशमें हुआ था। सोलह वर्षकी उम्रमें दण्डपाणि शाक्यकी कन्या यशोधराके साथ उसका विवाह कर दिया गया।

राजा शुद्धोदनने सिद्धार्थके लिए भोग-विलासका भरपूर प्रबन्ध कर दिया। तीन ऋतुओके लायक तीन सुन्दर महल बनवा दिये। वहॉपर नाच-गान और मनोरंजनकी सारी सामग्री जुटा दी गयी। दास-दासी उसकी सेवामे रख दिये गये।

पर ये सब चीजे सिद्धार्थको संसारमे बॉधकर नही रख सकी। विषयोमे उसका मन फॅसा न रह सका।

बूढ़े आदमीका दर्शन

वसन्त ऋतुकी बात है। एक दिन कुमारकी इच्छा हुई कि चलूँ, बगीचेकी सैर कर आऊँ।

रथ बढ़ने लगा। तभी कुमारको सड़कपर एक बूढ़ा आदमी दिखाई पड़ा। बुढ़ापेसे वह जर्जरित था। दाँत उसके टूट गये थे। बाल पक गये थे। शरीर टेढ़ा पड़ गया था। हाथमें लाठी पकड़े धीरे-धीरे काँपता हुआ वह सड़कपर चल रहा था।

कुमारने सारथीसे पूछा : "सौम्य, यह कौन पुरुष है ? इसके बाल भी औरोंके समान नहीं हैं !"

"कुमार ! यह भी एक दिन सुन्दर नौजवान था। इसके भी बाल काले थे। इसका भी शरीर स्वस्थ था। पर अब तो जराने, बुढापेने इसे दबा रखा है !"

"छन्न ! यह जरा क्या सभीको दबाती है, या केवल इसीको उसने दबाया है ?"

"कुमार, जरा सभीको दबाती है। एक दिन सभीको जवानी चली जाती है!"

"सौम्य, क्या किसी दिन मेरा भी यही हाल होगा?"

"अवश्य, कुमार!"

"धिक्कार है उस जन्मपर, जिसने मनुष्यका ऐसा रूप बना दिया है। धिक्कार है यहाँ जन्म लेनेवालेको!"

कुमारका मन खिन्न हो गया। वह जल्दी ही लौट पड़ा। राजाको पता लगा, तो उन्होने कुमारके लिए और अधिक मनोरंजनके सामान जुटा दिये। महलके चारो ओर पहरा बैठा दिया कि फिर कभी ऐसा कोई खराब दृश्य उसकी आँखोके आगे न पड़े।

रोगीका दर्शन

दूसरी बार कुमार जब बगीचेकी सैरको निकला, तो उसकी आँखोके आगे एक रोगी आ गया। उसकी साँस तेजीसे चल रही थी। कंधे ढीले पड़ गये थे। बाँहें सूख गयी थीं। पेट फूल गया था। चेहरा पीला पड़ गया था। दूसरेके सहारे वह बड़ी मुश्किलसे चल पा रहा था।

"यह कौन है सौम्य?" कुमारने सारथीसे पूछा।

"यह बीमार है कुमार! इसे ज्वर आता है।"

"यह बीमारी कैसे होती है, सौम्य?"

"बीमारी होती है धातुके प्रकोपसे।"

"क्या मेरा शरीर भी ऐसा ही होगा सौम्य?"

"क्यों नहीं कुमार? 'शरीरं व्याधिमन्दिरम्।' शरीर है, तो रोग होगा ही!"

कुमारको फिर एक धक्का लगा । बोला : "यदि स्वास्थ्य सपना है, तो कौन भोग कर सकता है शरीरके सुख और आनन्दका ? लौटा ले चलो रथ सौम्य !"

कुमार फिर दु:खी होकर महलको लौट आया । पिताने पहरा और कड़ा कर दिया ।

र्देका दर्शन

फिर एक दिन कुमार बगीचेकी सैरको निकला । अबकी बार एक अरथी उसकी आँखोके सामनेसे गुजरी । चार आदमी उसे उठाये लिये जा रहे थे । पीछे-पीछे बहुत-से लोग थे । कोई रो रहा था, कोई छाती पीट रहा था, कोई अपने बाल नोच रहा था ।

"यह सजा-सजाया, बँधा-बँधाया, कौन आदमी लेटा जा रहा है बाँसके इस खटोलेपर ?"
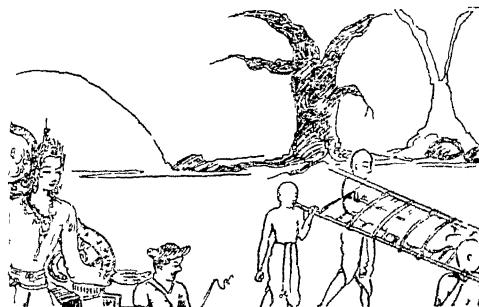
"यह आदमी लेटा नही है कुमार ! यह मर गया है । यह मृतक है, मुर्दा है । अपने सगे-सम्बन्धियोसे यह दूर चला गया । वहाँसे अब कभी नही लौटेगा । इसमे अब जान नहीं रह गयी ।

घरवाले नही चाहते, फिर भी वे इसे सदाके लिए छोड़ने जा रहे हैं कुमार !''

''क्या किसी दिन मेरा भी यही हाल होगा, सौम्य ?''

''हाँ, कुमार ! जो पैदा होता है, वह एक दिन मरता ही है।''

''धिक्कार है जवानीको, जो जीवनको सोख लेती है। धिक्कार है स्वास्थ्यको, जो शरीरको नष्ट कर देता है। धिक्कार है जीवनको, जो इतनी जल्दी अपना अध्याय पूरा कर देता है। क्या बुढापा, बीमारी और मौत सदा इसी तरह होती रहेगी सौम्य ?''

''हाँ, कुमार !''

कुमारको गहरा धक्का लगा। वह उदास होकर महलको लौट पडा।

राजाने कुमारकी विरक्तिका हाल सुनकर उसके चारो ओर बहुत-सी सुन्दरियाँ तैनात कर दी। वे कुमारको मन लुभानेकी तरह-तरहसे कोशिश करने लगी, पर कुमारपर कोई असर नही हुआ। अपने साथी उदायीसे उसने कहा : ''स्त्रियोंका यह रूप कभी टिकनेवाला है क्या ? क्या रखा है इसमे ?''

सन्यासीका दर्शन

चौथी बार कुमार बगीचेकी सैरको निकला, तो उसे एक सन्यासी दिखाई पडा।

''कौन है यह, सौम्य ?''

''यह संन्यासी है, कुमार !''

''यह शान्त है, गम्भीर है। इसका मस्तक मुँड़ा हुआ है।

अपने हाथमें भिक्षा-पात्र लिये है । कपड़े इसके रँगे हुए हैं । क्या करता है यह सौम्य ?"

"कुमार ! इसने ससारका त्याग कर दिया है । तृष्णाका त्याग कर दिया है । कामनाओंका त्याग कर दिया है । द्वेषका त्याग कर दिया है । यह भीख माँगकर खाता है । ससारसे इसे कुछ लेना-देना नहीं ।"

कुमारको बड़ी प्रसन्नता हुई । उसका चेहरा खिल उठा । बगीचेमें पहुँचा, तो हरकारेने आकर कहा : "भगवन्, पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ है ।"

"राहु पैदा हुआ !" कुमारके मुखसे निकला । उसने सोचा कि एक बन्धन और बढ़ा ।

पिताने सुना, तो पोतेका नाम ही रख दिया 'राहुल' !

पितासे घर छोड़नेकी अनुमति

एक ओर महलमे पुत्रके जन्मका उत्सव मनाया जा रहा था, दूसरी ओर सिद्धार्थ अपने पितासे कह रहा था : "पिताजी, ससारमें चारो ओर दुःख ही दु.ख भरा है । किसीको बुढ़ापा

सता रहा है, किसीको रोग। किसीकी मृत्यु हो रही है, कोई किसी अन्य दुःखमे पड़ा है। सभी प्राणियोका जीवन दुःखमय है। इन महादुःखोसे मुक्त होनेके लिए मैं प्रव्रज्या लूँगा।"

पिता तो बेटेके मुँहसे ऐसी बाते सुनकर अवाक् रह गये। बोले : "बेटा, वैराग्यकी इन बातोमे कुछ नही रखा है। छोड़ो इन्हें। गृहस्थ-धर्मका पालन करो और ससारका सुख भोगो।"

"यदि बुढापा मेरी जवानीको न छीने, रोग मेरे शरीरको पीडित न करे, मृत्यु मेरा प्राण न ले, विपत्तियाँ मेरी सम्पत्तियो-को नष्ट न करें, तो मैं घरपर रहनेको तैयार हूँ पिताजी !"

शुद्धोदनके पास क्या जवाब था इन बातोंका ? वे बोले : "बेटा, असम्भव बातोके पीछे पड़ना ठीक नही। इन सब बातोका सोचना बन्द करो और जीवनका जो सुख प्राप्त है, उसे अच्छी तरह भोगो।"

सिद्धार्थ बोला : "पिताजी। मृत्यु एक दिन आकर हमे आपसे दूर कर ही देगी। यह घर एक दिन छूट ही जायगा। फिर क्या लाभ है इसीमे पड़े रहनेमें ? मुझे तो घर छोड़नेके अलावा दूसरा कोई रास्ता ही नही दीखता।"

शुद्धोदनने कुमारका पहरा और कड़ा कर दिया। भोग-विलासके साधन और बढा दिये।

महाभिनिष्क्रमण

सिद्धार्थ सजे-सजाये पलंगपर लेटा। नृत्य, संगीत और वाद्यसे उसका मनोरजन करनेके लिए अनेक सुन्दरियाँ उसके कमरेमे आ गयी। वे तरह-तरहसे अपनी कलाएँ दिखाकर कुमार-को लुभाने लगी। पर कुमारको कुछ अच्छा नही लगा।

वह जल्दी ही सो गया। उसे सोता देख वे सुन्दरियाँ भी ऊँघने लगी और थोड़ी देरमे सो गयी।

आधी रातको सिद्धार्थकी नींद खुली। उसने देखा, चारो ओर स्त्रियाँ बिखरी पड़ी हैं। किसीके मुखसे फेन निकल रहा है, किसीके मुँहसे लार। कोई दाँत कटकटा रही है, कोई बर्रा रही है। किसीका कोई अंग खुला है, किसीका कोई। किसीके बाल बिखरे हैं, कोई जोर-जोरसे खुर्राटे ले रही है। किसीका काजल फैल गया है, किसीका सिन्दूर।

यही है कामिनियोंका सौन्दर्य! इसीपर लोग मरते हैं। छिः छिः!

सिद्धार्थको लगा, जैसे वह किसी श्मशानमे हो, जहाँ चारों ओर गन्दी-घिनौनी लाशें पड़ी हो!

सिद्धार्थका वैराग्य तीव्र हो गया।

"मैं आज ही महाभिनिष्क्रमण करूँगा। आज ही मैं घर छोड़ दूँगा।"—ऐसा सोचकर कुमार पलंगसे उतरकर दरवाजे-पर आया। आवाज दी : "कौन है यहाँ ?"

"आर्यपुत्र! मैं हूँ छन्दक।"

"मैं महाभिनिष्क्रमण करना चाहता हूँ। घोड़ा तैयार करो।"

"अच्छा देव!"

छन्दक घोडा ठीक करने निकला। सिद्धार्थ यशोधराके कमरेकी ओर बढ़ा। सोचा, चलनेके पहले बेटेका मुँह तो देख लूँ!

सिद्धार्थने धीरेसे किवाड़ खोले। कमरा खुशबूसे गमक रहा था। सुगन्धित तेलके दीपक जल रहे थे। यशोधरा फूलोंसे सजी शैयापर सो रही थी। राहुलके मस्तकपर उसका हाथ था।

'राहुलको उठाऊँगा, तो शायद यशोधरा जाग जाय और मेरे गृह-त्यागमे बाधा पड़ जाय'—ऐसा सोचकर सिद्धार्थ भीतर न जाकर ड्योढ़ीसे ही लौट पड़ा।

महलसे उतरकर सिद्धार्थ घोड़ेपर सवार हुआ। रातोरात वह ३० योजन दूर निकल गया। वह गोरखपुरके पास अनोमा नदीके तटपर जा पहुँचा। वहाँ उसने अपने राजसी वस्त्र और आभूषण उतारकर, तलवारसे अपना जूड़ा काटकर सन्यास ले लिया।

राजमहल छोड़ते समय सिद्धार्थकी आयु थी २९ सालकी।

तपस्या

सुन्दरी पत्नी यशोधरा, दुधमुँहे राहुल और कपिलवस्तु जैसे राज्यका मोह छोड़कर सिद्धार्थ तपस्याके लिए चल पड़ा।

वह राजगृह पहुँचा। वहाँ उसने भिक्षा माँगी। पहला कौर मुँहमें देते हुए उसे कय होने लगी। ऐसा भोजन उसने पहले कभी नही खाया था। पर 'अब तो यही खाना है'—ऐसा सोचकर उसने जीको कड़ा किया।

सिद्धार्थ घूमते-घूमते आलार कालाम और उद्दक रामपुत्रके पास पहुँचा। उनसे उसने योग-साधना सीखी। समाधि लगाना सीखा। पर उससे उसे संतोष नहीं हुआ। वह उरुवेला पहुँचा और वहाँपर तरह-तरहसे तपस्या करने लगा।

सिद्धार्थने पहले तो केवल तिल-चावल खाकर तपस्या शुरू की, बादमे कोई भी आहार लेना बन्द कर दिया। शरीर सूखकर काँटा हो गया।

छह साल बीत गये तपस्या करते हुए। सिद्धार्थकी तपस्या सफल नही हुई!

मध्यम मार्ग

एक दिन कुछ स्त्रियाँ किसी नगरसे लौटती हुई वहाँसे निकलीं, जहाँ सिद्धार्थ तपस्या कर रहे थे। उनका एक गीत सिद्धार्थके कानमें पड़ा :

"वीणाके तारोंको ढीला मत छोड़ दो। ढीला छोड़ देनेसे उनसे सुरीला स्वर नही निकलेगा। पर तारोंको इतना कसो भी मत कि वे टूट जायँ······"

बात सिद्धार्थको जँच गयी। वह मान गया कि नियमित आहार-विहारसे ही योग सिद्ध होता है। अति किसी बातकी अच्छी नही। मध्यम मार्ग ही ठीक होता है।

सुजाताकी खीर

वैशाखी पूर्णिमाकी बात है। सुजाता नामकी स्त्रीको पुत्र हुआ। उसने बेटेके लिए एक वटवृक्षकी मनौती मानी थी। वह मनौती पूरी करनेके लिए सोनेके थालमें गायके दूधकी खीर

भरकर पहुँची । सिद्धार्थ वहाँ बैठा ध्यान कर रहा था । उसे लगा कि वृक्षदेवता ही मानो पूजा लेनेके लिए शरीर धरकर बैठे हैं ।

सुजाताने बडे आदरसे सिद्धार्थको खीर भेट की । कहा : ''जैसे मेरी मनोकामना पूरी हुई, उसी तरह आपकी भी हो ।''

सिद्धार्थ खीर लेकर पासमें ही बहती निरंजना नदीपर गया । स्नान करके खीर खा ली और थाल फेंक दिया नदीमे ।

बोधकी प्राप्ति

उसी रातको ध्यान लगानेपर सिद्धार्थकी साधना सफल हुई । उसे सच्चा बोध हुआ । तभीसे वह 'बुद्ध' कहलाया ।

जिस वृक्षके नीचे सिद्धार्थको बोध हुआ, उसका नाम है 'बोधि-वृक्ष' । जिस स्थानकी यह घटना है, वह है 'बोधगया' । ईसाके ५२८ साल पहलेकी यह घटना है, जब सिद्धार्थ ३५ सालका युवक था ।

बुद्ध भगवान् ४ सप्ताहतक वहीं बोधवृक्षके नीचे रहे । वे धर्मके स्वरूपका चिन्तन करते रहे । इसके बाद वे धर्मका उपदेश करनेके लिए निकल पड़े ।

धर्म-चक्र-प्रवर्तन

उसी साल आषाढकी पूर्णिमाको भगवान् बुद्ध काशीके पास मृगदावमे पहुँचे। आजके सारनाथमे। वहीपर उन्होने सबसे पहला धर्मोपदेश दिया।

भगवान् बुद्धने मध्यम मार्ग अपनानेके लिए लोगोसे कहा। दु ख, उसके कारण और निवारणके लिए अष्टागिक मार्ग सुझाया। अहिसापर बडा जोर दिया। यज्ञ और पशु-बलिकी निन्दा की।

धर्म-प्रचार

तबसे लेकर ८० वर्षकी उम्रतक भगवान् बुद्धने अपने धर्मका सीधी सरल लोकभाषामे—पालीमे प्रचार किया। उनकी सच्ची सीधी बातें जनमानसको स्पर्श करती थी। लोग आ-आकर उनसे दीक्षा लेने लगे।

बौद्ध धर्म सबके लिए खुला था। उसमे हर आदमीका स्वागत था। ब्राह्मण हो या शूद्र, पापी हो या चाण्डाल, स्त्री हो या पुरुष, वेश्या हो या सती, गृहस्थ हो या ब्रह्मचारी, सबके लिए उनका दरवाजा खुला था। जात-पाँत, ऊँच-नीचका कोई भेदभाव नही था उनके यहाँ।

संघकी स्थापना

भिक्षुओंकी संख्या बढ़ने लगी। बडे-बड़े राजा-महाराजा भी उनके शिष्य बनने लगे। शुद्धोदन और राहुलने भी बौद्ध धर्मकी दीक्षा ली। जब भिक्षुओकी सख्या बढने लगी तो बौद्ध संघकी स्थापना की गयी।

बादमें लोगोंके आग्रहपर बुद्ध भगवान्ने स्त्रियोको भी सघमे

ले लेनेके लिए अनुमति दे दी, यद्यपि इसे उन्होने विशेष अच्छा नही माना ।

विदेशोंमें प्रचार

भगवान् बुद्धने 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय', लोक-कल्याणके लिए अपने धर्मका देश-विदेशमें प्रचार करनेके लिए भिक्षुओको इधर-उधर भेजा । आज भी भारतसे अधिक विदेशोमे बौद्ध धर्मका प्रचार है । चीन, जापान, कोरिया, मगोलिया, बर्मा, थाईलैंड, हिन्दचीन, श्रीलका आदिमे बौद्ध धर्म आज भी जीवित धर्म है और करोड़ो प्राणियोका कल्याण कर रहा है ।

निर्वाण

भगवान् बुद्धने सत्य और अहिसा, प्रेम और करुणा, सेवा और त्यागसे परिपूर्ण जीवन बिताया ।

वैशाखी पूर्णिमाको उनका जन्म हुआ था, उसी दिन उन्हें बुद्धत्व प्राप्त हुआ और उसी दिन निर्वाण । ईसासे ४८३ साल पहले भगवान् बुद्धने महापरिनिर्वाण प्राप्त किया ।

भगवान् बुद्धका आदर्श जीवन युग-युगतक लोगोको सत्य, प्रेम और करुणाकी प्रेरणा देता रहेगा ।

काश, हम उनके जीवनसे, उनके उपदेशसे कुछ सीख पाये !

●

: २ :

दूसरी अति है, शरीरको अत्यधिक पीडा देकर तपस्या करना। अपनेको नाना प्रकारसे पीडा पहुँचाना।

इन दोनो प्रकारकी अतिको छोड़कर तथागतने मध्यम मार्ग खोज निकाला है। वह शाति देनेवाला है, ज्ञान देनेवाला है, निर्वाण देनेवाला है। वही है अष्टांगिक मार्ग।

आर्य सत्य

आर्य सत्य चार हैं · (१) दु ख, (२) दु ख-समुदय, दु खका कारण, (३) दु ख-निरोध, (४) दु खनिरोध-गामिनी प्रतिपद्, दु.ख-निरोधका मार्ग।

पहला आर्य सत्य है—दु·ख। जन्म दु·ख है। जरा भी दु ख है। व्याधि भी दु·ख है। मरण भी दुःख है। अप्रियोका सयोग दु.ख है। प्रियोका वियोग भी दु.ख है। इच्छा करनेपर किसीका न मिलना भी दुःख है।

रूप, वेदना, सज्ञा, संस्कार और विज्ञान, ये पॉच उपादान स्कध ही दु ख हैं। सभी भौतिक अवस्थाओको एक साथ कहा जाता है—रूप। सभी मानसिक अवस्थाओको एक साथ कहा जाता है—नाम। नामकी ३ स्थितियॉ हैं : वेदना, सज्ञा और संस्कार। विषयके छूनेसे सुख-दु ख, सौमनस्य या दौर्मनस्यकी अथवा उपेक्षाकी जो अनुभूति होती है, उसका नाम है—वेदना। विषयको वैसा पहचान लेनेका ही नाम है—सज्ञा। वितर्क, विचार, लोभ, द्वेष, करुणा आदि मानसिक वृत्तियोको एक साथ कहा जाता है—संस्कार। पाप-पुण्य आदि जितने प्रकारके चित्त हैं, सभीको एक साथ कहा जाता है—विज्ञान।

दूसरा आर्य सत्य है—दु:ख-समुदय। दु.खका कारण। यह है तृष्णा। फिर जन्म लेनेकी तृष्णा, प्रसन्न होनेकी तृष्णा, रागसहित जहाँ-तहाँ प्रसन्न होनेकी तृष्णा। काम-तृष्णा, भव-तृष्णा, विभव-तृष्णा।

तीसरा आर्य सत्य है--दु:ख-निरोध। तृष्णाका पूरे तौरसे विराग होना। तृष्णाके जाते रहनेसे दु.ख भी जाता रहता है।

चौथा आर्य सत्य है—दु:खनिरोध-गामिनी प्रतिपद्। यह है निर्वाणकी ओर ले जानेवाला मार्ग—अष्टांगिक मार्ग।

अष्टांगिक मार्ग

अष्टांगिक मार्गमे आठ बातें हैं :

१ सम्यक् ज्ञान—आर्य सत्योंका ठीक-ठीक ज्ञान।
२. सम्यक् संकल्प—पक्का निश्चय
३. सम्यक् वचन—सत्य बोलना।
४ सम्यक् कर्मान्त—हिंसा, द्रोह और दुराचरणसे बचना।
५. सम्यक् आजीव—न्यायपूर्ण जीविका चलाना।
६. सम्यक् व्यायाम—सत्कर्मके लिए सतत उद्योग करना।
७. सम्यक् स्मृति—लोभ आदि चित्त-संतापसे बचना।
८. सम्यक् समाधि—राग-द्वेषसे रहित चित्तकी एकाग्रता।

यह है अष्टांगिक मार्ग। इन आठ बातोंका पालन करनेसे मनुष्यकी प्रज्ञाका उदय होता है और प्रज्ञाके उदय होनेपर निर्वाणकी प्राप्ति होती है।

निर्वाण

निर्वाण माने बुझ जाना। तृष्णाका बुझ जाना। वास-

नाओंका शान्त हो जाना। तृष्णासे ही, वासनासे ही दुःख होता है। दुःखोसे सर्वथा छुटकारेका नाम है—निर्वाण। भगवान् बुद्धने कहा है :

"भिक्षुओ, संसार अनादि है। अविद्या और तृष्णासे संचालित होकर प्राणी भटकते फिरते हैं। उनके आदि-अन्तका पता नही चलता। भवचक्रमे पड़ा हुआ प्राणी अनादिकालसे बार-बार जनमता-मरता आया है। ससारमे बार-बार जन्म लेकर प्रियके वियोग और अप्रियके संयोगके कारण रो-रोकर अपार आँसू वहाये हैं। दीर्घकालतक दु:खका, तीव्र दु.खका अनुभव किया है। अब तो सभी सस्कारोसे निर्वेद प्राप्त करो, वैराग्य प्राप्त करो, मुक्ति प्राप्त करो!"[1]

> जिघच्छा परमा रोगा, सखारा परमा दुखा।
> एव ञत्वा यथाभूतं निब्बानं परम सुख॥[2]

रोगोकी जड़ है जिघृक्षा, ग्रहण करनेकी इच्छा, तृष्णा। सारे दु खोंका मूल है संस्कार। इस तत्त्वको जानकर तृष्णा और संस्कारके नाशसे ही मनुष्य निर्वाण पा सकता है।

> सचे नेरेसि अत्तानं कंसो उपहतो यथा।
> एस पत्तो'सि निब्बानं, सारम्भो तेन विज्जति॥[3]

यदि तुम टूटे हुए काँसेकी तरह अपनेको नीरव, निश्चल, या कर्महीन बना लो, तो तुमने निर्वाण पा लिया। कारण, कर्मोका आरम्भ अब तुममे रहा नही और उसके न रहनेसे जन्म-मरणका चक्कर भी छूट गया।

---

१. सजुत्त निकाय १४।२। २. धम्मपद २०३। ३. वही, १३४।

आत्मावलम्बन

अष्टांगिक मार्ग या पारमिता-मार्ग द्वारा निर्वाण प्राप्त करना, तृष्णाओंसे मुक्ति पाना, वासनाओंसे छुटकारा पाना मनुष्यके अपने हाथमे है। जो भी व्यक्ति चाहे, इनका सहारा लेकर निर्वाण प्राप्त कर सकता है।

भगवान् बुद्धने अपने अन्तिम क्षणोंमें भिक्षुओको यही आदेश दिया कि भिक्षुओ, तुम आत्मदीप बनकर विहरो। तुम अपनी ही शरण जाओ। किसी दूसरेका सहारा मत ढूँढ़ो। केवल धर्मको अपना दीपक बनाओ। केवल धर्मकी शरण लो :

> अत्तदीपा अत्तसरणा अनञ्ञसरणा।
> धम्मदीपा धम्मसरना होत ॥[1]

तीन प्रकारकी करुणा

बौद्ध धर्ममे तीन प्रकारकी करुणा बतायी है : १. स्वार्थ-मूला करुणा, जैसी माँकी बेटेके प्रति। २. सहैतुकी करुणा, किसीको भी कष्टमे देखकर हृदयका द्रवित होना। ३. अहैतुकी या महाकरुणा, जिसमे न तो मनुष्यका स्वार्थ होता है और न वह पात्र देखता है। सबपर वह अपनी करुणा बिखेरता है।

हीनयान और महायान

भगवान् बुद्धके निर्वाणके कुछ दिनों बाद बौद्ध धर्मकी कई शाखाएँ हो गयी। उनमे दो मुख्य हैं : १. हीनयान और २. महायान।

---

१. महापरिनिब्बाण सुत्त ३३।

हीनयान शाखावाले मानते हैं कि शुभ और अशुभ दोनो तरहकी वासनाएँ हेय हैं। वे केवल निवृत्तिपर जोर देते हैं।

महायान शाखावाले अशुभ वासनाएँ छोड़कर शुभ वासनाओके विकासपर जोर देते हैं। वे मानते हैं कि अशुभ वासनाओका क्षय होनेपर आदमी बुद्ध बन जाता है। बुद्ध होनेपर भी वे निर्वाण इसलिए नही चाहते कि जबतक दूसरे लोग दु:ख भोग रहे हैं, तबतक मैं ही सुख क्यो भोगूँ ?

पारमिता मार्ग

हीनयानमे अष्टाङ्गिक मार्गपर जोर है, तो महायानमे पारमिता मार्गपर।

'पारमिता' शब्द बना है, 'परम' से। इसका अर्थ है, सबसे ऊँची अवस्था।

छह पारमिताएँ मुख्य है . १. दान-पारमिता, २. शील-पारमिता, ३. शान्ति-पारमिता, ४ वीर्य-पारमिता, ५ ध्यान-पारमिता और ६ प्रज्ञा-पारमिता।

दान-पारमिता : दूसरोंके हितके लिए अपना स्वत्व छोडनेका नाम है, दान। दान-पारमिता तीन बातोंसे होती है : १ जब दानके पात्रकी कोई सीमा नही रहती। प्राणिमात्र दानका पात्र बन जाता है। २. जब देनेकी वस्तुकी कोई सीमा नही रहती। मनुष्य अपना सब कुछ दूसरोंके हितमे लगानेको तैयार हो जाता है। ३. जब दानके बदलेमे कुछ भी पानेकी आकाक्षा नही रहती।

शील-पारमिता : 'शील' माने सदाचार। अहिंसा, सत्य आदि

नैतिक नियमोंको चोटीपर पहुँचानेका नाम है, शील-पारमिता। हिंसा न शरीरसे होनी चाहिए, न वचनसे, न मनसे। इसी तरह दूसरे नियमोका पूरा-पूरा पालन होना चाहिए।

शान्ति-पारमिता : 'शान्ति' माने क्षमा, सहनशीलता। चाहे जितना कष्ट आये, धैर्य न छोड़ना, विचलित न होना। शान्ति-पारमिता है—मरने जैसा कष्ट होनेपर भी शान्तिसे उसे झेल लेना।

वीर्य-पारमिता : 'वीर्य' माने उत्साह। अशुभको छोड़कर पूरे उत्साहके साथ आगे बढ़नेका नाम है, वीर्य-पारमिता।

ध्यान-पारमिता : 'ध्यान' माने किसी एक वस्तुमे चित्तको एकाग्र करना। चित्त जब पूरी तरह वशमे हो जाय, तो ध्यान-पारमिता सिद्ध होती है।

प्रज्ञा-पारमिता : 'प्रज्ञा' माने सत्यका साक्षात्कार होना। चित्त जब निर्मल हो जाता है, तब प्रज्ञाकी प्राप्ति होती है। निर्मल चित्तसे ही सत्यके दर्शन होते हैं।

बौद्ध-दीक्षाका मन्त्र है :

बुद्धं सरणं गच्छामि। मैं बुद्धकी शरण लेता हूँ।
धम्मं सरणं गच्छामि। मैं धर्मकी शरण लेता हूँ।
संघं सरणं गच्छामि। मैं संघकी शरण लेता हूँ।

: ३ :

भगवान् बुद्धने गौतमके रूपमे जब जन्म लिया, उसके पहले वे बहुतसे जन्म ले चुके थे। कहते हैं कि उन्होने इसके पहले तपस्वी, राजा, वृक्ष, देवता, सिह, हाथी, घोड़ा, गीदड़, भैसा, कुत्ता, बन्दर, मछली, सुअर आदिके कितने ही जन्म लिये थे।

जातक कथाओमे ऐसे ५४७ जन्मोंका वर्णन है। बुद्धघोषने कोई दो हजार वर्ष पहले ये कथाएँ लिखी थी। कहा गया है कि सबसे पहले जन्ममे भगवान् बुद्ध सुमेध तपस्वीके रूपमे पैदा हुए थे और सबसे अन्तमे बेसतरके रूपमे। तीन बार उन्होने चाण्डाल-के घरमे जन्म लिया था। एक बार वे जुआरीके रूपमे रहे थे।

इनमेंसे कुछ कथाएँ बहुत प्रसिद्ध हैं। संसारके कोने-कोनेमे इनका प्रचार हुआ है।

दुष्टकुमारकी दुष्टता : १ :

काशीमे ब्रह्मदत्त नामका एक राजा था। उसका बेटा था दुष्टकुमार। था भी वह बड़ा दुष्ट। सबको गाली देता, मारता। नौकरतक उससे तग आ गये थे।

एक शामको दुष्टकुमार नदीमे नहाने गया। उसी समय आसमानमे बादल छा गये। चारो ओर अँधेरा हो गया। कुमारने नौकरोसे कहा : "चलो, नदीके बीच मुझे ले चलो। मैं वहीपर नहाऊँगा।"

नौकर चिढ़े थे। मौका मिला। उन्होने दुष्टकुमारको पानीमे डुबा दिया। राजासे जाकर बहाना बना दिया। खोज-खबर की गयी, फिर भी कहीपर उसका पता नही चला। कुमारको नदीमे बहता हुआ एक लक्कड़ मिल गया। वह उसी लक्कड़पर बैठ गया।

नदी किनारे एक सेठने ४० करोड़ रुपयेका सोना गाड़ रखा था। मरनेपर वह वही सॉप बनकर आ बैठा। दूसरे सेठने ३० करोड़का सोना गाड़ा था, वह वहाँ चूहा बनकर आ बैठा।

पानी बरसनेसे इन दोनोके बिल पानीसे भर गये। सॉप और चूहा भी उसी लक्कडपर आकर बैठ गये, जिसपर दुष्टकुमार बैठा था। वह जोर-जोरसे रोता जा रहा था। एक तोता भी पेडसे गिरकर नदीमे बहने लगा, वह भी उसी लक्कडपर आ बैठा।

इस जन्ममे बोधिसत्त्व (बुद्ध भगवान्) नदी किनारे संन्यासीके रूपमे कुटिया बनाकर रहते थे। राजकुमारका रोना सुनकर

उन्होने उसे बचानेका निश्चय किया। वे किसी तरह उस लक्कडको किनारे खीच लाये। फिर उन्होने चारों प्राणियोको गरमाकर, सुखाकर खानेको फल-मूल दिये।

चारोने तपस्वीका उपकार माना। सर्पने कहा : "जरूरत हो, तब आइयेगा। मैं ४० करोड़ रुपया आपको दे सकता हूँ।" चूहेने कहा : "जब चाहे तब मैं ३० करोड़ रुपया दे सकता हूँ।" तोतेने लाल चावल देनेको कहा। दुष्टकुमार बोला : "आइयेगा मैं आपका खूब स्वागत करूँगा।"

समयपर दुष्टकुमार राजा बना। बोधिसत्त्व उसकी परीक्षाको निकले। पहले वे साँप, चूहे और तोतेके पास गये। वे अपने-अपने वादेकी चीजे देने लगे, पर उन्होने कुछ नही लिया।

दुष्टकुमारने बोधिसत्त्वको देखते ही नौकरोसे कहा "इस नकली तपस्वीको पकड़कर मारो और सूली दे दो!"

बोधिसत्त्व मार खाते रहे। वे चिल्लाते न थे। सिर्फ इतना कहते : "बुद्धिमानोने ठीक कहा है कि किन्ही आदमियोको पानीसे निकालनेसे अच्छा है लकडीको निकालना।"

नागरिकोने बोधिसत्त्वसे पूछा : "महाराज, आपने हमारे राजाका कोई उपकार किया है?"

वे बोले : "बाढसे इसे बचाकर मैने खुद ही आफत मोल ली है।"

नागरिकोने सोचा : कैसा दुष्ट है यह राजा। जिसने उसकी जान बचायी, उसीकी जान लेनेपर उतारू है। ऐसा राजा हमारा क्या भला करेगा?

नागरिक बिगड़ पड़े । उन्होने उस कृतघ्नी राजाको मारकर नदीमे फेक दिया और बोधिसत्त्वका तिलक कर उन्हे गद्दीपर बैठा दिया ।

कुछ दिन बाद बोधिसत्त्व सर्प, चूहे और तोतेकी परीक्षा लेनेको निकले । सर्प और चूहेने अपना-अपना सोना बोधिसत्त्वको भेट कर दिया । तोतेने भी कहा : "मैं चावल मँगवाऊँ ?" उन्होने कहा : "अभी जरूरत नही है ।"

तीनोको वे अपने साथ ले आये और प्रेमपूर्वक रहने लगे ।

तारीफ इसमें है ! : २ :

बोधिसत्त्व उस जन्মमे भैसेकी योनिमे थे ।

एक बन्दर उन्हे बुरी तरह सताने लगा । वह कभी उनकी पीठपर कूदता, कभी उनकी पूँछ खीचता । कभी उनकी आँखमे उँगली घुसेड़ देता !
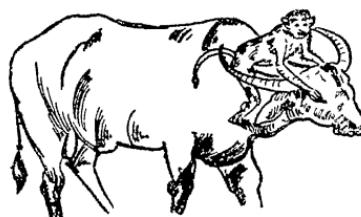
पर बोधिसत्त्व सदा शांत बने रहते ।

देवताओंने उनसे कहा : "इस दुष्टको दण्ड क्यो नही देते ? क्या तुम इससे डरते हो ?"

बोधिसत्त्व बोले : "नही देवताओ ! न तो मैं इससे डरता हूँ, न इसने मुझे खरीद रखा है । मैं चाहूँ तो सिरके एक झटकेसे,

सीग मारकर इसका काम तमाम कर दूँ। पर नही, मै इसके अपराध क्षमा करता हूँ। जबर्दस्तका ठेगा सिरपर होता है। बलवान्का अत्याचार सभी सहते हैं। तारीफ तो इसमे है कि निर्बलका अत्याचार चुपचाप सह लिया जाय।''

ऐसा मित्र किस कामका ?   : ३ :

बोधिसत्त्व उस जन्ममे मगधके सख सेठ थे। अस्सी करोड़की सम्पत्ति थी उनके पास।

काशीमे भी वैसा ही एक सेठ था। उसका नाम था पिलिय।

दोनो सेठोमे बड़ी मित्रता थी।

अचानक सकट आया।

पिलिय सेठका दिवाला निकल गया। वह सख सेठके पास राजगृह पहुँचा।

संख सेठने बड़े प्रेमसे उसका स्वागत किया। अपनी आधी सम्पत्ति उन्होने उसे बाँट दी और दास-दासी भी बाँट दिये।

एक बार संख सेठपर भी संकट आ गया।

उसने सोचा कि चलूँ, पिलिय सेठके पास काशी।

सेठानीको धर्मशालामे ठहराकर वह पिलिय सेठके यहाँ पहुँचा।

सेठने उसे देखकर अपने नौकरको आज्ञा दी.

''दे दो इसे तुम्बाभर भुस!''

संख सेठसे उसने कहा· ''यहाँ तुम्हारे ठहरनेकी जरूरत नही। भुस लेकर चलते बनो।''

सख सेठ भुस लेकर सेठानीके पास पहुँचे । भुस देखकर वह रो पड़ी । बोली : "जब उसने धन ही नही दिया, तो यह भुस लेनेकी ही कौन-सी जरूरत थी ?"

संख सेठ बोले : ' उसने तो मित्रता तोड़ दी, पर मैं क्यो भुस लेनेसे इनकार कर मित्रता तोड़ देता ? मित्रता बनाये रखनेको ही मैंने यह भुस ले लिया ।"

सेठानी रोती रही, तभी सेठका एक पुराना नौकर वहाँसे निकला । सख सेठको देखकर वह उनके पैरोपर गिर गया । बडे आदरसे वह दोनोको घर ले गया और वहाँ सम्मानपूर्वक कुछ दिन रखा । फिर उसने राजासे फरियाद की ।

संख सेठसे राजाने पूछा : "क्यों सेठ, तुमने क्या सचमुच इस पिलिय सेठको ४० करोड रुपया दिया था ?"

"हाँ महाराज, मैंने ४० करोड़ रुपया दिया था, अपने दास, अपने पशु भी आधे-आधे बाँट दिये थे ।"

राजाने पिलिय सेठसे पूछा : "क्यों यह बात सही है न ?"

"हाँ, महाराज !"

"इस सख सेठने तेरे साथ ऐसा व्यवहार किया और तूने बदलेमें इसे तुम्बाभर भुस दिया ?"

पिलिय सेठ चुप रह गया ।

राजाने मन्त्रियोंसे सलाह करके आज्ञा दी कि पिलियका सारा धन जब्त करके संख सेठको दे दिया जाय ।

सख सेठने कहा : "महाराज, मुझे पराया धन नहीं चाहिए ! मुझे उतना ही दिला दीजिये, जितना मैंने दिया था ।"

राजाने सख सेठका ४० करोड रुपया उसे दिलवा दिया । उसे लेकर संख सेठ राजगृह लौट गया और दान-पुण्य करते हुए जीवन बिताने लगा ।

होश खोना हो तो पियो ! : ४ :

वल्कल वस्त्र और मृगचर्म पहने हुए एक जटाधारी ब्राह्मण राजा सर्वमित्रके दरबारमें पहुँचा । उसके हाथमें एक सुरा-पात्र था । जाते ही वह बोला : "ले लो, ले लो यह शराब ! जिसे लोक-परलोककी चिन्ता न हो, मौतका डर न हो, वह इसे ले सकता है, जरूर ले सकता है ।"

राजा बड़ा शराबी था । खुद पीता, दूसरोंको भी पिलाता । राजभरमें अंधेर मचा हुआ था ।

ब्राह्मणका यह वचन सुनकर और उसके चेहरेपर तेज देखकर राजाने उसे प्रणाम किया । कहा : "ब्राह्मण देवता ! आप तो खूब सौदा कर रहे हैं । सभी तो अपनी चीजके गुण बताते हैं, पर आप तो उसके दोष बता रहे हैं । बड़े सत्यवादी हैं आप !"

ब्राह्मण बोला : "सर्वमित्र ! जो इसे पीता है, अपना होश खो बैठता है। उसे चाहे जो खिला दो। सड़कपर वह लड़खड़ाकर गिरता है। कुत्ते उसके मुँहमे पेशाब करते हैं। ले लो, ले लो यह शराब ! तुम इसे पीकर सड़कपर नंगे नाचोगे। तुम्हे बहू और बेटीमे कोई भेद न जान पड़ेगा। स्त्री इसे पीकर पतिको पेड़मे बाँधकर कोड़े लगवायेगी। इसे पीकर लाखवाले खाकमे मिल जाते हैं। राजा लोग रंक बन जाते हैं। पापकी माँ है यह शराब ! ले लो, ले लो यह शराब !"

सर्वमित्र ब्राह्मणके पैरोंपर गिर पड़ा। बोला : "धन्य हैं महाराज ! आपने मुझे शराबके सब अवगुन बता दिये। मैं अब कभी शराब न पिऊँगा। आपने मुझे इसके दोष ऐसे अच्छे ढगसे समझाये, जैसे बाप बेटेको समझाता है, गुरु चेलेको। मैं पाँच गाँव, सौ दासियाँ और दस रथ देता हूँ आपको पुरस्कारमे।"

ब्राह्मण रूपधारी बोधिसत्त्व बोले : "मुझे कुछ न चाहिए। तुम्हारा पतन मुझसे नही देखा जाता, इसीसे मैं ऐसा रूप धरकर तुम्हें बचाने आया।" •

: ४ :

हिन्दू धर्ममे वेदोंका जो स्थान है, बौद्ध धर्ममें पिटकोंका वही स्थान है ।

भगवान् बुद्धने अपने हाथसे कुछ नही लिखा था । उनके उपदेशोको उनके शिष्योने पहले कंठ किया, फिर लिख लिया । वे उन्हें पेटियोंमे रखते थे । इसीसे नाम पड़ा, 'पिटक' ।

पिटक तीन हैं : (१) विनय पिटक, (२) सुत्त पिटक और (३) अभिधम्म पिटक ।

विनय पिटक

विनय पिटकमे विस्तारसे वे नियम दिये गये हैं, जो भिक्षु-संघके लिए बनाये गये थे । इनमे बताया गया है कि भिक्षुओ और भिक्षुणियोको रोजके जीवनमे किन-किन नियमोंका पालन करना चाहिए ।

सुत्त पिटक

त्रिपिटकमें सबसे महत्त्ववाला पिटक सुत्त पिटक है । इसमे बौद्ध धर्मके सभी मुख्य सिद्धान्त स्पष्ट करके समझाये गये हैं ।

सुत्त पिटक पाँच निकायोमे बँटा है : १. दीघ निकाय, २. मज्झिम निकाय, ३. संयुत्त निकाय, ४. अगुत्तर निकाय और ५. खुद्दक निकाय ।

खुद्दक निकाय सबसे छोटा है । इसके १५ अंग हैं । इसीका एक अग है 'धम्मपद' । एक अंग है 'सुत्त निपात' ।

अभिधम्म पिटक

अभिधम्म पिटकमे धर्मकी और उसके क्रिया-कलापोकी व्याख्या पण्डिताऊ ढगसे की गयी है । वेदोमे जिस तरह ब्राह्मण-ग्रन्थ हैं, उसी तरह पिटकोमे अभिधम्म पिटक है ।

ब्रह्म-विहार : १ :

करणीयमत्थ कुसलेन यं तं सन्त पदं अभिसमेच्च ।
सक्को उजू च सूजू च सुवचो चस्स मुदु अनतिमानी ॥१॥
सन्तुस्सको च सुभरो च अप्पकिच्चो च सल्लहुकवुत्ति ।
सन्तिन्द्रियो च निपको च अप्पगब्भो कुलेसु अननुगिद्धो । २॥

जो आदमी शान्त पद चाहता है, जो कल्याण करनेमे कुशल है, उसे चाहिए कि वह योग्य और परम सरल बने । उसकी बात सुन्दर हो, मीठी हो, नम्रतासे भरी हो ।

उसे सन्तोषी होना चाहिए । उसका पोषण सहज होना चाहिए । कामोंमें उसे ज्यादा फँसा नही होना चाहिए । उसका जीवन सादा हो । उसकी इन्द्रियाँ शान्त हो । वह चतुर हो । वह ढीठ न हो । किसी कुलमे उसकी आसक्ति न होनी चाहिए ।

न च खुद्दं समाचरे किञ्चि येन विञ्ञू परे उपवदेय्युं ।
सुखिनो वा खेमिनो होन्तु सब्बे सत्ता भवन्तु सुखितत्ता ॥३॥

वह ऐसा कोई छोटेसे छोटा काम भी न, करे, जिसके लिए दूसरे जानकार लोग उसे दोष दे। उसके मनमे ऐसी भावना होनी चाहिए कि सब प्राणी सुखी हो, सबका कल्याण हो, सभी अच्छी तरह रहे।

> ये केचि पाणभूतत्थि तसा वा थावरा वा अनवसेसा।
> दीघा वा ये महन्ता वा मज्झिमा रस्सकाऽणुकथूला ॥४॥
> दिट्ठा वा येव अदिट्ठा ये च दूरे वसन्ति अविदूरे।
> भूता वा संभवेसी वा सब्बे सत्ता भवन्ति सुखितत्ता ॥५॥

जितने भी प्राणी हैं, फिर वे जंगम हो या स्थावर, बड़े हो या छोटे, बहुत महीन हो या स्थूल, दिखाई पडते हो या न दिखाई पडते हो, दूर हो या निकट, पैदा हुए हो या होनेवाले हो, सबके सब सुखी रहे।

> न परो परं निकुब्बेथ नातिमञ्ञेथ कत्थचिनं कञ्चि।
> ब्यारोसना पटिघसञ्ञा नाञ्ञमञ्ञस्स दुक्खमिच्छेय्य ॥६॥

कोई किसीको न ठगे। कोई किसीका अपमान न करे। वैर या विरोधसे एक-दूसरेके दुःखकी इच्छा न करे।

> माता यथा नियं पुत्तं आयुसा एक-पुत्त- मनुरक्खे।
> एवंऽपि सब्बभूतेसु मानस भावये अपरिमाणं ॥७॥

माता जैसे अपनी जानकी परवाह न कर अपने इकलौते बेटे-की रक्षा करती है, उसी तरह मनुष्य सभी प्राणियोके प्रति असीम प्रेमभाव बढ़ाये।

> मेत्त च सब्बलोकस्मिं मानसं भावये अपरिमाणं।
> उद्धं अधो च तिरियं च असंबाधं अवेरं असपत्तं ॥८॥

बिना बाधाके, बिना वैर या शत्रुताके मनुष्य ऊपर-नीचे, इधर-उधर सारे संसारके प्रति असीम प्रेम बढ़ाये।

तिट्ठं चर निसिन्नो वा सयानो वा यावतस्स विगतमिद्धो।
एतं सतिं अधिट्ठेय्य ब्रह्ममेतं विहारं इधमाहु ॥९॥

खडा हो चाहे चलता हो, बैठा हो चाहे लेटा हो, जबतक मनुष्य जागता है, तबतक उसे ऐसी स्मृति बनाये रखनी चाहिए। इसीका नाम है, ब्रह्म-विहार।

दिट्ठिं च अनुपगम्म सीलवा दस्सनेन संपन्नो।
कामेसु विनेय्य गेधं न हि जातु गब्भसेय्यं पुनरेतीति' ॥१०॥

ऐसा मनुष्य किसी मिथ्या दृष्टिमे नहीं पड़ता। शीलवान् होकर, शुद्ध दर्शनवाला होकर वह काम, तृष्णाका नाश कर डालता है। उसका पुनर्जन्म नहीं होता।

धर्माचरण क्या है ? : २ :

एक समय भगवान् कोसलके साला नामक गाँवमे पहुँचे। वहाँके ब्राह्मण गृहस्थोने कहा : "हमें धर्मका उपदेश दीजिये।"

"अच्छा भोः ! सुनो :

शरीरका अधर्माचरण तीन तरहका होता है, वाणीका अधर्माचरण चार तरहका होता है और मनका अधर्माचरण तीन तरहका होता है।

शरीरका अधर्माचरण :

१. प्राणातिपात : हिंसा करना, खूनसे अपने हाथ रँगना, मार-काट करना, प्राणियोंके प्रति निर्दय होना।

---

१. सुत्त पिटक, खुद्दक निकाय, सुत्त निपात, मेत्त-सुत्त ११०।

२. अदिन्नादान : चोरी। दूसरेका बिना दिया हुआ धन लेना।

३. काममे मिथ्याचार : परायी स्त्रियोंके साथ दुराचार करना।

वाणीका अधर्माचरण :

१. झूठ बोलना। न जानते हुए यह कहना कि मैं जानता हूँ। न देखते हुए यह कहना कि मैंने देखा है। देखते हुए कहना कि मैंने नही देखा। इस तरह अपने लिए या दूसरेके लिए या थोड़े लाभके लिए जान-बूझकर झूठ बोलना।

२ चुगलखोरी करना। फूट डालनेके लिए यहाँकी बात सुनकर वहाँ कहना, वहाँकी बात सुनकर यहाँ कहना। मेल-जोलवालोको फोडना, फूटे हुएको शह देना, गुटबाजीसे खुश होना, गुटमे रहना, भेद पैदा करनेवाली वाणी बोलना।

३. कडवी भाषा बोलना। तेज, कर्कश, दूसरोको कड़वी लगनेवाली, दूसरोको पीडा देनेवाली, क्रोधसे भरी हुई, अशान्ति पैदा करनेवाली वाणी बोलना।

४. प्रलाप करना। बे-वक्त बोलना, अयथार्थ बोलना, बिना उद्देश्यके बोलना, निरर्थक बोलना, अनीतिमय बोलना।

मनका अधर्माचरण :

१. अभिध्या। दूसरेके धनका, दूसरेकी सपत्तिका लोभ करना। यह सोचना कि यह संपत्ति, जो दूसरेकी है, मेरी नही है, मेरी हो जाय।

२. व्यापन्न चित्त। द्वेषपूर्ण संकल्प करना। जैसे : ये प्राणी मारे जायँ, ये नष्ट हो जायँ, ये न रहें आदि।

३. मिथ्यादृष्टि। उलटी धारणा होना। 'दान कुछ नही है, यज्ञ कुछ नही है, सुकृत कुछ नही है, दुष्कृत कुछ नही है, लोक कुछ नही, परलोक कुछ नही'—ऐसी धारणा होना।

गृहपतियो ! ये हैं अधर्माचरण। इस तरहके आचरणवाले प्राणी शरीर छोडनेके बाद नरकमे जाते हैं।

इसके विपरीत आचरण धर्माचरण है और वैसा करनेवाले मरनेके बाद स्वर्गमे उत्पन्न होते हैं।''[१]

हर कामकी कसौटी क्या हो ? : ३ :

राहुलसे भगवान्‌ने कहा : ''राहुल ! दर्पण किस कामके लिए है ?''
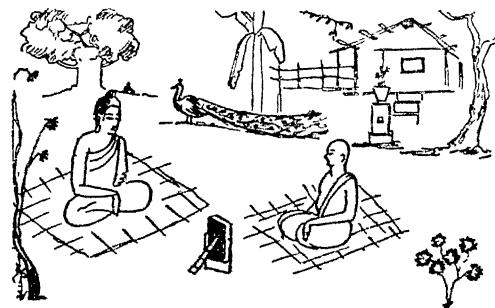
''भन्ते ! देखनेके लिए।''

''ऐसे ही राहुल, देख-देखकर कायासे काम करना चाहिए। देख-देखकर वचनसे काम करना चाहिए। देख-देखकर मनसे काम करना चाहिए।

१. मज्झिम निकाय, सालेय्य सुत्तन्त १।५।१।

"जब राहुल, तू कायासे कोई काम करना चाहे, तो तुझे सोचना चाहिए कि मेरा यह काय-कर्म अपने लिए पीड़ादायक तो नही ? दूसरेके लिए पीड़ादायक तो नही ? दोनोके लिए पीड़ादायक तो नही ? क्या यह अकुशल काय-कर्म है, दुःख देनेवाला काय-कर्म है ? यदि तुझे ऐसा लगे कि यह बुरा काय-कर्म है, तो उसे कभी मत करना ।

"यदि राहुल, तू वचनसे काम करना चाहे, तो भी इसी तरह प्रत्यवेक्षा कर । यदि तू मनसे काम करना चाहे, तो भी इसी तरह प्रत्यवेक्षा कर । वही काम कर, जो न अपने लिए पीड़ादायक हो, न दूसरेके लिए और न दोनोके लिए ।"[1]

गृहस्थके कर्तव्य : ४ :

एक समय भगवान् राजगृहके वेणुवनमे विहार कर रहे थे । उन्होने देखा—शृगाल नामका एक वैश्यका लडका भीगे वस्त्र, भीगे केश, पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊपर और नीचे—सभी दिशाओको हाथ जोड़कर नमस्कार कर रहा है । उन्होने पूछा .

"गृहपति-पुत्र ! तू क्यो सबेरे उठकर दिशाओको नमस्कार कर रहा है ?"

वह बोला : "भन्ते ! मरते समय पिताजीने मुझसे कहा था कि तात, दिशाओको नमस्कार करना । सो भन्ते, पिताकी आज्ञाका पालन कर रहा हूँ ।"

१. मज्झिम निकाय, अम्बलट्ठिक-राहुलोवाद-सुत्तन्त २।२।१ ।

भगवान्‌ने कहा : "गृहपति-पुत्र ! आर्य-धर्ममे छह दिशाओं-को इस तरह नमस्कार नहीं किया जाता ।"

"तब कैसे किया जाता है, भन्ते ?"

भगवान् बोले : "आर्य श्रावकके जब चार कर्म-क्लेश मिट जाते हैं, चार स्थानोंसे जब वह पाप नही करता और जब हानिके छह मुखोका वह सेवन नही करता—इस तरह १४ पापोसे वह मुक्त हो जाता है, तब वह छहो दिशाओंको आच्छादितकर लोक, परलोक दोनोपर विजय प्राप्त कर लेता है और मरनेपर स्वर्ग जाता है ।

चार कर्म-क्लेश

कर्म-क्लेश, कर्मके मल चार हैं : १. प्राणातिपात (प्राणियो-को मारना), (२) अदत्तादान (चोरी करना), ३. परदार-गमन (कामसम्बन्धी दुराचार करना) और ४. मृषावाद (झूठ बोलना) ।

पापके चार स्थान

पापके चार स्थान ये हैं : १. छन्द, रागके रास्तेमें जाकर पापकर्म करना, २. द्वेषके रास्तेमे जाकर पापकर्म करना, ३. मोहके रास्तेमें जाकर पापकर्म करना और ४. भयके रास्तेमे जाकर पापकर्म करना ।

गृहपति-पुत्र ! आर्य श्रावक न छन्दके रास्ते जाता है, न द्वेषके । न मोहके रास्ते जाता है, न भयके ।

छह अपाय-मुख

छह भोगोके अपाय-मुख हैं : १. मद्यपान, शराब पीना,

२. संध्यामे चौरस्तेकी सैर, ३. नाच-तमाशा, ४. जुआ, ५. दुष्टकी मित्रता और ६. आलस्य ।

नशेके छह कुपरिणाम हैं : १. तत्काल धनकी हानि, २. कलहका बढना, ३. रोगोंका घर, ४. बदनामीका कारण, ५. लज्जाका नाश और ६. बुद्धिका दुर्बल करना ।

जुएके छह दोष हैं : १. जीतनेपर वैर, २. हारनेपर धनका सोच, ३. तत्काल धनका नुकसान, ४. सभामें जानेपर जुआरीपर कोई विश्वास नहीं करता, ५. मित्र और सलाहकार तिरस्कार करते हैं और ६. शादी-विवाह करनेको कोई आता है, तो यह सोचकर उसके यहाँ कन्या नही देता कि यह जुआरी है, इसलिए स्त्रीका भरण-पोषण नही कर सकता ।

मित्र और अमित्र

पराया धन हरनेवाले, बातूनी, खुशामदी और धनके नाशमे सहायता करनेवाले मित्रोंको अमित्र जानना चाहिए ।

मित्र उसीको जानना चाहिए, जो उपकारी हो, समान सुख-दु:खी हो, हितवादी हो और अनुकम्पा करनेवाला हो ।

छह दिशाओंकी पूजा

छह दिशाओकी पूजा यह है : १. माता-पिताकी सेवा, २. आचार्यकी सेवा, ३. पत्नीकी सेवा, ४. मित्रोकी सेवा, ५. सेवककी सेवा और ६. साधु-ब्राह्मणोंकी सेवा ।"

शृगाल बोला : "आश्चर्य भन्ते ! अद्भुत भन्ते ! जैसे उल्टेको सीधा कर दे, जैसे ढँकेको खोल दे, मार्ग-भूलेको मार्ग बता दे, अन्धकारमें दीपक दिखा दे, वैसे भगवान्ने धर्मको प्रकाशित

किया। 'बुद्धं सरण गच्छामि ! धम्मं सरणं गच्छामि ! । संघं सरणं गच्छामि' । । ।''[१]

पाण न हाने न चादिन्नमादिये,
मुसा न भासे न च मज्जपोसिया ।
अब्रह्मचरिया विरमेय्य मेथुना
रत्तिं न भुञ्जेय्य विकाल भोजनं ॥[२]

गृहस्थको चाहिए कि वह किसी प्राणीकी हिंसा न करे, चोरी न करे, असत्य न बोले, शराब आदि मादक पदार्थोंका सेवन न करे, व्यभिचारसे बचे और रात्रिमे असमय भोजन न करे ।

हँसीमें भी झूठ न बोलो ! : ५ :

एक समय भगवान् राजगृहके वेणुवनमे थे । राहुल अम्बलट्ठिकामे थे । एक दिन शामको भगवान् राहुलके यहाँ पहुँचे । राहुलने देखकर आसन बिछाया और पैर धोनेके लिए लोटेमें पानी ला रखा । पैर धोकर भगवान् आसनपर आ बैठे । उन्होंने राहुलसे कहा :

"राहुल ! लोटेमें बचे थोड़ेसे पानीको देखता है न ?"

"हाँ, भन्ते !"

"राहुल, ऐसा ही थोड़ा श्रमणभाव उन लोगोमें है, जिन्हें झूठ बोलनेमें लज्जा नही आती ।"

जलको फेंककर लोटेको औंधाकर भगवान्ने कहा : "राहुल,

---

१. दीघ निकाय, पाथिक वग्ग, सिगालोवाद-सुत्त (३।८) ।
२. सुत्तनिपात, धम्मिनिक सुत्त २५ ।

ऐसा ही औंधा श्रमणभाव उन लोगोंका है, जिन्हें झूठ बोलनेमें लज्जा नही आती ।"

लोटेको सीधा करके भगवान्‌ने कहा : "ऐसा ही खाली, तुच्छ श्रमणभाव उन लोगोका है, जिन्हे झूठ बोलनेमे लज्जा नही आती । जिसे जान-बूझकर झूठ बोलनेमे लज्जा नहीं, उसके लिए कोई भी पाप-कर्म अकरणीय नही, ऐसा मैं मानता हूँ । इसलिए राहुल, हँसीमे भी झूठ नही बोलूँगा, यह सीख लेनी चाहिए ।"[1]

क्रोधसे सात अनर्थ : ६ :

भगवान्‌ने कहा :

"भिक्षुओ ! जो स्त्री या पुरुष नाराज होता है, उसके शत्रुको सात बातोसे खुशी होती है ।"

"वे सात बाते क्या हैं ?"

"भिक्षुओ ! वे सात बातें इस प्रकार हैं :

१. मनुष्य चाहता है कि उसका शत्रु कुरूप हो जाय ।

---

१. मज्झिम निकाय, अम्बलट्ठिक-राहुलोवाद-सुत्तन्त २।२।१ ।

क्यो ? इसलिए कि कोई यह नही पसन्द करता कि उसका शत्रु स्वरूपवान् हो, सुन्दर हो। तो, जब उसे क्रोध आता है, तो भले ही उसने मल-मलकर स्नान किया हो, सुगन्ध लगायी हो, बाल और दाढी ठीक ढंगसे बनायी हो, उसके कपड़े स्वच्छ हों, फिर भी वह कुरूप लगता है, क्योकि उसकी आँखोमें क्रोध भरा हुआ है। इससे उसके शत्रुको प्रसन्नता होती है।

२. मनुष्य चाहता है कि उसका शत्रु पीड़ा पाये। क्यों ? इसलिए कि कोई आदमी यह पसन्द नही करता कि उसका शत्रु आरामसे रहे। तो, जब उसे क्रोध आता है, तो भले ही वह बढ़िया बिस्तरपर पड़ा हो, बढ़िया कंबल उसके पास हो, मृगचर्म ओढ़े हो, सिर और पैरके नीचे बढ़िया तकिये लगे हों, फिर भी वह पीड़ाका अनुभव करता है, क्योकि उसकी आँखोंमे क्रोध भरा हुआ है। इससे उसके शत्रुको प्रसन्नता होती है।

३. मनुष्य चाहता है कि उसका शत्रु सम्पन्न न रहे। क्यों ? इसलिए कि अपने शत्रुकी सम्पन्नता किसीको अच्छी नही लगती। मनुष्य जब क्रोधका शिकार होता है, तब वह बुरेको अच्छा और अच्छेको बुरा समझता है। इस तरह करते रहनेसे उसे हानि और कष्ट भोगना पडता है। उसकी सम्पन्नता जाती रहती है। इससे उसके शत्रुको प्रसन्नता होती है।

४. मनुष्य चाहता है कि उसका शत्रु धनवान् न हो। क्यो ? इसलिए कि कोई यह पसंद नहीं करता कि उसका शत्रु पैसेवाला हो। तो, जब उसे क्रोध आता है, तो भले ही उसने अपने श्रमसे संपत्ति जुटायी हो, अपनी भुजाओसे, अपने श्रमके बलपर पसीनेसे, ईमानदारीसे पैसा इकट्ठा किया हो, वह गलत काम करने लगता

है, जिससे उसे जुर्माना आदि भरना पड़ता है। उसकी सम्पत्ति नष्ट हो जाती है। इससे उसके शत्रुको प्रसन्नता होती है।

५. मनुष्य चाहता है कि उसके शत्रुकी नामवरी न हो। क्यों ? इसलिए कि कोई आदमी यह पसंद नही करता कि उसके शत्रुकी ख्याति हो। तो, जब उसे क्रोध आता है, तो पहले उसने भले ही अपने अच्छे कामोसे नामवरी प्राप्त की हो, अब लोग कहने लगते हैं कि यह तो बड़ा क्रोधी है। उसकी नामवरी मिट जाती है। इससे उसके शत्रुको प्रसन्नता होती है।

६. मनुष्य चाहता है कि उसका शत्रु मित्रहीन रहे, उसका कोई मित्र न हो। क्यो ? इसलिए कि कोई मनुष्य नही चाहता कि उसके शत्रुके कोई मित्र हो। तो, जब उसे क्रोध आता है, तो उसके मित्र, उसके साथी, उसके सगे-सम्बन्धी उससे दूर रहने लगते हैं, क्योंकि वह क्रोधका शिकार होता है। इससे उसके शत्रुको प्रसन्नता होती है।

७. मनुष्य चाहता है कि मरनेपर उसके शत्रुको सुगति न मिले। उल्टे नरकमें बुरा स्थान मिले। क्यो ? इसलिए कि कोई शत्रु नही चाहता कि उसके शत्रुको अच्छा स्थान मिले। तो, जब मनुष्यको क्रोध आता है, तो वह मन, वचन, कर्मसे तरह-तरहके गलत काम करता है। इससे मरनेपर वह नरकमे जाता है। इससे उसके शत्रुको प्रसन्नता होती है।

क्रोध करनेसे मनुष्यका चेहरा कुरूप हो जाता है, उसे पीड़ा होती है, वह गलत काम करता है, उसकी सम्पत्ति नष्ट हो जाती है, उसकी बदनामी होती है। उसके मित्र और सगे-सम्बन्धी उसे छोड़ देते हैं और उसपर तरह-तरहके संकट आते हैं।

क्रोधी आदमी किसी बातका ठीक अर्थ नही समझता। वह अन्धकारमे रहता है। वह अपना होश खो बैठता है। वह मुँहसे कुछ भी बक देता है। उसे किसी बातकी शर्म नहीं रहती। वह किसीकी भी हत्या कर बैठता है, फिर वह साधारण आदमी हो या साधु हो, माता-पिता हो या और कोई। वह आत्महत्यातक कर बैठता है।

क्रोधसे मनुष्यका सर्वनाश होता है। जो लोग क्रोधका त्याग कर देते हैं, काम, क्रोध, ईर्ष्यासे अपनेको मुक्त कर लेते हैं, वे निर्वाण पाते हैं।"[1]

क्रोधसे कैसे छूटें ? : ७ :

भगवान्‌ने कहा :

भिक्षुओ ! क्रोध और क्षोभके उदय होनेपर पाँच प्रकार-से उससे छुटकारा मिल सकता है :

१. मैत्रीसे। जिस आदमीके प्रति क्रोध या क्षोभ हो, उसके प्रति मैत्रीकी भावना करो।

२. करुणासे। जिस आदमीके प्रति क्रोध या क्षोभ हो, उसके प्रति करुणाकी भावना करो।

३. मुदितासे। जिस आदमीके प्रति क्रोध या क्षोभ हो, उसके प्रति मुदिताकी भावना करो।

४. उपक्षासे। जिस आदमीके प्रति क्रोध या क्षोभ हो, उसके प्रति उपेक्षाकी भावना करो।

---

१. अगुत्तर निकाय, सत्तक निपात ६०।

५. कर्मोके स्वामित्वकी भावनासे। जिस आदमीके प्रति क्रोध या क्षोभ हो, उसके बारेमे ऐसा सोचो कि वह जो कर्म करता है, उसका फल अच्छा हो या बुरा, उसीको भोगना पड़ेगा।[1]

प्राणिहिंसा मत करो : ८ :

भगवान्ने 'उच्चाशयन, महाशयन' का निषेध किया है, यह सोचकर उस समय षड्वर्गीय भिक्षु, सिहचर्म, व्याघ्रचर्म, चीतेका चर्म—इन तीन महाचर्मोको धारण करते थे और चारपाईके हिसाबसे भी काटकर रखते थे। चारपाईके भीतर भी बिछाते थे और बाहर भी। लोग देखकर हैरान हुए। भगवान्से यह बात कही। भगवान् बोले :

"भिक्षुओ! महाचर्मोको, सिह, बाघ और चीतेके चर्मको नही धारण करना चाहिए। जो धारण करे, उसे दुक्कट (दुष्कृत) का दोष!"

भगवान्ने महाचर्मोका निषेध किया है, यह सोच षड्वर्गीय भिक्षु गायके चामको धारण करते थे। उसे चारपाईके प्रमाणसे भी काट रखते थे।

एक दिन एक दुराचारी भिक्षुने सुन्दर चमड़ेके लिए एक चितकबरे बछड़ेकी हत्या की।

लोग हैरान थे। भिक्षु प्राणिहिंसाकी कैसे प्रेरणा करेगा? भगवान्ने तो अनेक प्रकारसे प्राणिहिंसाकी निन्दा की है।

भिक्षुओने भगवान्से यह बात कही। उन्होने उस पापी

---

१. अगुत्तर निकाय, पाणञ्चक निपात १६१।

भिक्षुसे पूछा : "सचमुच भिक्षु, तुमने प्राणिहिसाके लिए प्रेरणा की ?"

"सचमुच भगवन् !"

बुद्ध भगवान्ने फटकारा : "मोघ पुरुष ! कैसे तुमने प्राणि-हिसाकी प्रेरणा की ? मैंने तो अनेक प्रकारसे प्राणिहिसाकी निन्दा और उसके त्यागकी प्रशसा की है ।

भिक्षुओ, प्राणिहिसाकी प्रेरणा नही करनी चाहिए । जो प्रेरणा करे, उसको धर्मानुसार दण्ड करना चाहिए । भिक्षुओ, गायका चाम नही धारण करना चाहिए । जो धारण करे, उसे दुक्कटका दोष । भिक्षुओ, कोई भी चर्म नही धारण करना चाहिए । जो धारण करे, उसे दुक्कटका दोष !"[1]

चित्तके मल　　: ९ :

एक समय भगवान् श्रावस्तीके जेतवनमे विहार कर रहे थे । उन्होने भिक्षुओसे कहा : "भिक्षुओ ! जैसे कोई मैला-कुचैला कपड़ा रँगरेज किसी रंगमे रँगे, तो वह बदरंग ही रहेगा, वैसे ही चित्तके मलिन होनेसे दुर्गति अनिवार्य है ।"

चित्तके मल ये हैं, जिन्हे 'उपक्लेश' भी कहा जाता है : १. विषमलोभ, २. द्रोह, ३. क्रोध, ४. पाखड, ५. अमर्ष, ६. निष्ठुरता, ७. ईर्ष्या, ८. मात्सर्य, ९. ठगना, १०. शठता, ११. जड़ता, १२. हिसा, १३. मान, १४. अतिमान, १५. मद और १६. प्रमाद ।[2]

---

१. विनयपिटक, महावग्ग, नियम ५।२।५-६ । २. सुत्तपिटक, मज्झिम निकाय, वत्थ-सुत्तन्त १।१।७ ।

अंगुलिमाल

: १० :

एक समय भगवान् जेतवनमें विहार करते थे।

उस समय राजा प्रसेनजित्के राज्यमे एक डाकू था अगुलि-माल। बड़ा भयानक, बड़ा खूँखार! मार-काटमे उसे बडा मजा आता। दयाका उसमें नाम नही था। उसने कितने ही ग्राम उजाड़कर साफ कर दिये थे।

भगवान् श्रावस्तीमे पिण्डचार करके उसी रास्ते चले, जहाँ डाकू अंगुलिमाल रहता था। ग्वालोने, किसानोने, राहगीरोने भगवान्से कहा :

"हे भन्ते! मत जाओ इस रास्ते। अगुलिमाल डाकू रहता है इधर। वह मनुष्योको मार-मारकर अगुलियोकी माला पहनता है। बीस, तीस, चालीस, पचास आदमियोके दल भी उसके हाथ पड जाते हैं।"

भगवान् मौन धारणकर चलते रहे।

दूसरी बार भी, तीसरी बार भी ग्वालो आदिने भगवान्-को रोका, पर वे चलते ही चले गये।

अगुलिमालने दूरसे ही भगवान्को आते देखा। सोचने लगा—आश्चर्य है जी! पचासो आदमी भी मिलकर चलते हैं, तो मेरे हाथमे पड़ जाते हैं, पर यह श्रमण अकेला ही चला आ रहा है, मानो मेरा तिरस्कार ही करता आ रहा है। क्यों न इसे जानसे मार दूँ?

ढाल-तलवार और तीर-धनुष लेकर वह भगवान्की तरफ दौड़ पड़ा। फिर भी वह उन्हे नही पा सका।

अंगुलिमाल सोचने लगा—आश्चर्य है जी ! आश्चर्य है। मैं दौड़ते हुए हाथीको, घोड़ेको, रथको दौड़कर पकड़ लेता हूँ, पर मामूली चालसे चलनेवाले इस श्रमणको नहीं पकड़ पा रहा हूँ ! बात क्या है ?

खडा होकर भगवान्से बोला : "खड़ा रह श्रमण !"

'मैं स्थित हूँ अंगुलिमाल ! तू भी स्थित हो।"

"श्रमण ! चलते हुए भी तू कहता है—'स्थित हूँ' और मुझ खड़े हुएको कहता है—'अस्थित'। भला यह तो बता कि तू कैसे स्थित है और मैं कैसे अस्थित ?"

"अगुलिमाल ! सारे प्राणियोंके प्रति दण्ड छोड़नेसे मैं सर्वदा 'स्थित' हूँ। तू प्राणियोंमे असंयमी है। इसलिए तू 'अस्थित' है।"

अंगुलिमालपर भगवान्की बातोका असर पड़ा। उसने निश्चय किया कि मैं चिरकालके पापोंको छोड़ूँगा।

उसने अपनी तलवार और हथियार खोह, प्रपात और नालेमें फेंक दिये। भगवान्के चरणोंकी वन्दना की और उनसे प्रव्रज्या माँगी।

"आ भिक्षु !" कहकर भगवान्‌ने उसे दीक्षा दी।

अंगुलिमाल पात्र-चीवर ले श्रावस्तीमे भिक्षाके लिए निकला। किसीका फेका हुआ ढेला उसके शरीरपर लगा। दूसरेका फेंका डण्डा उसके शरीरपर लगा। तीसरेका फेका कंकड़ उसके शरीरपर लगा। बहते खून, फटे सिर, टूटे पात्र, फटी संघाटीके साथ अंगुलिमाल भगवान्‌के पास पहुँचा। उन्होने दूरसे कहा :

"ब्राह्मण ! तूने कबूल कर लिया। जिस कर्मफलके लिए तुझे हजारों वर्ष नरकमे पचना पड़ता, उसे तू इसी जन्ममें भोग रहा है।"[1]

अंगुलिमालने एकान्तमे ध्यानावस्थित हो अनन्त शान्ति और सुखका अनुभव किया। उसने कहा : "तथागत द्वारा बिना दण्ड, बिना शस्त्रके ही मैं दमन किया गया हूँ। पहले मैं हिंसक था, आज अहिंसक हूँ। बुद्धने मुझे शरण दी, मेरा भवजाल सिमट गया।"

१. मज्झिम निकाय, अंगुलिमाल-सुत्तन्त २।४।६।

: ५ :
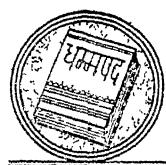
हिन्दू-धर्ममें गीताका जो स्थान है, बौद्ध धर्ममे वही स्थान धम्मपदका है। गीता जैसे महाभारतका एक अश है, उसी तरह धम्मपद सुत्तपिटकके खुद्दक निकायका एक अंश है। धम्मपदमें २६ वग्ग हैं, ४२३ श्लोक।

बौद्ध धर्मको समझनेके लिए अकेला धम्मपद ही काफी है। मनुष्यको अन्धकारसे प्रकाशमे ले जानेके लिए यह प्रकाशमान दीपक है। ठीक ही कहा है, इसमें—

> **को नु हासो किमानन्दो निच्चं पज्जलिते सति।**
> **अन्धकारेन ओनद्धा पदीपं न गवेसथ॥**

यह हँसना कैसा ? यह आनन्द कैसा ? जब रोज चारों ओर आग लगी है। ससार उस आगमे जला जा रहा है। तब अन्धकारमें घिरे हुए तुम लोग प्रकाशको क्यो नही खोजते ?

सारा खेल मनका ही है   : १ :

श्रावस्तीके जेतवनमें चक्खुपाल नामके एक अंधे अर्हत भिक्षु थे। सुबह वे टहलते थे, तो उनके पैरोंके नीचे दबकर बहुत-सी बीरबहूटियाँ मर जाती थीं। कुछ भिक्षुओंने यह बात भगवान् बुद्धसे कही। वे बोले : "भिक्षुओ, चक्खुपाल अर्हत भिक्षु है। अर्हतको जीवहिंसा करनेकी चेतना नही होती।"

भिक्षुओंने पूछा : "भन्ते! वे अन्धे क्यों हो गये?"

भगवान् बोले : ' चक्खुपाल अपने पूर्वजन्मोंमे एक बार वैद्य थे। उस समय उन्होने बुरे इरादेसे एक स्त्रीकी आँखे फोड दी थीं। उसीका कर्मफल उनके पीछे लगा है :

> मनो पुब्बङ्गमा धम्मा मनो सेट्ठा मनोमया।
> मनसा चे पदुट्ठेन भासति वा करोति वा।
> ततो नं दुक्खमन्वेति चक्कं' व वहतो पदं ॥[1]

मन ही सारी प्रवृत्तियोका अगुआ है। प्रवृत्तियोका आरम्भ मनसे ही होता है। वे मनोमय हैं। जब कोई आदमी दूषित
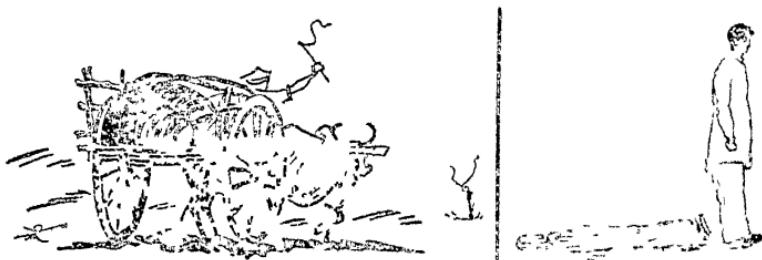
मनसे बोलता है या वैसा कोई काम करता है, तो दु:ख उसका

---

१. यमकवग्गो १।

पीछा उसी तरह करता है, जिस तरह बैलगाडीके पहिये बैलके पैरोका पोछा करते हैं ।

> मनो पुब्बङ्गमा धम्मा मनो सेट्ठा मनोमया ।
> मनसा चे पसन्नेन भासति वा करोति वा ।
> ततो न सुखमन्वेति छाया व अनपायिनी ॥[१]

मन ही सारी प्रवृत्तियोंका अगुआ है । प्रवृत्तियाँ मनसे ही आरम्भ होती हैं । यदि मनुष्य शुद्ध मनसे बोलता है या कोई काम करता है, तो सुख उसी तरह उसका पीछा करता है, जिस तरह मनुष्यके पीछे उसकी छाया ।''

अपना उद्धार अपने हाथमें : २ :

कुमार कश्यपने सयाने होकर बौद्ध धर्मकी दीक्षा ला । उन्हें अर्हत्व मिल गया । उनकी माँने उन्हें १२ बरससे नही देखा था । एक दिन भिक्षाके लिए वे उसके पास पहुँच गये । वह भी दीक्षा ले चुकी थी, फिर भी उसके स्तनोंसे दूधकी धारी बह उठी । उसने कश्यपको पकड़ लिया ।

''छिः छिः, यह क्या कर रही हो ? दीक्षा लिये तुम्हें इतने दिन हो गये, तुम स्नेहका बन्धन भी नही तोड़ सकी !''

माँको बोध हुआ । मोह छूटा । वह भी अर्हत्व पा गयी ।

एक दिन प्रसंग उठनेपर उसका उदाहरण देते हुए भगवान् बुद्धने कहा :

> अत्ता हि अत्तनो नाथो को हि नाथो परो सिया ।
> अत्तना हि सुदन्तेन नाथं लभति दुल्लभं ॥[२]

मनुष्य स्वयं ही अपना स्वामी है । भला दूसरा कोई उसका

---

१. यमकवग्गो २ । २. अत्तवग्गो १२।४ ।

स्वामी कैसे हो सकता है ? मनुष्य अपने-आप ही अच्छी तरहसे अपना दमन करके दुर्लभ स्वामित्वको, निर्वाणको प्राप्त कर सकता है ।

अत्ता हि अत्तनो नाथो अत्ता हि अत्तनो गति ।
तस्मा संञ्ञम'त्तानं अस्सं भद्रं व वाणिजो ॥[1]

मनुष्य स्वयं ही अपना स्वामी है । स्वयं ही वह अपनी गति है । इसलिए तुम अपने-आपको संयममें रखो, जैसे बनिया अपने सधे हुए घोड़ेको अपने वशमे रखता है ।

अपने-आपको जीतो : ३ :

यो सहस्सं सहस्सेन सङ्गामे मानुसे जिने ।
एक च जेय्यमत्तान स वे सङ्गामजुत्तमो ॥[2]

जो आदमी हजारो आदमियोको लडाईमे हजार बार जीत ले, उससे भी बढकर योद्धा वह है, जो अपने-आपको जीत ले ।

अत्तना व कतं पापं अत्तना संकिलिस्सति ।
अत्तना अकत पापं अत्तना व विसुज्झति ।
सुद्धी असुद्धी पच्चत्तं नाञ्ञो अञ्ञ विसोधये ॥[3]

अपना किया हुआ पाप अपनेको मलिन करता है । पाप न करनेपर मनुष्य शुद्ध रहता है । मनुष्यका शुद्ध रहना या अशुद्ध रहना अपने-आपपर ही निर्भर है । कोई भी आदमी दूसरे आदमी-को शुद्ध नही कर सकता ।

अत्तान चे तथा कयिरा यथ'ञ्ञमनुसासति ।
सुदन्तो वत दम्मेथ अत्ता हि किर दुद्दमो ॥[4]

---

१. भिक्खुवग्गो २५।२१ । २. सहस्सवग्गो ८।४ । ३. अत्तवग्गो १२।९ । ४. वही, १२।३ ।

मनुष्य दूसरोको जैसा बननेका उपदेश देता है, वैसा वह अपने-आपको बना ले। पहले वह अपनी इन्द्रियोको वशमे कर ले, तब दूसरोसे इन्द्रिय-दमनके लिए कहे। सच बात तो यह है कि अपना दमन करना ही कठिन है।

किसीको सताओ मत :४:

सब्बे तसन्ति दण्डस्स सब्बे भायन्ति मच्चुनो।
अत्तानं उपमं कत्वा न हनेय्य न घातये ॥[१]

दण्डसे सभी लोग डरते हैं। मृत्युसे सभी भय खाते हैं। दूसरोको अपने जैसा ही जानकर मनुष्य न तो किसीको मारे और न किसीको मारनेकी प्रेरणा करे।

सब्बे तसन्ति दण्डस्स सब्बेसं जीवितं पियं।
अत्तानं उपमं कत्वा न हनेय्य न घातये ॥[२]

दण्डसे सभी लोग डरते हैं। जीवन सबको प्यारा लगता है। दूसरोको अपने जैसा ही जानकर मनुष्य न तो किसीको मारे, न किसीको मारनेकी प्रेरणा करे।

सुखकामानि भूतानि यो दण्डेन विहिंसति।
अत्तनो सुखमेसानो पेच्च सो न लभते सुखं ॥[३]

जो मनुष्य अपने सुखकी इच्छा करता है और सुखकी इच्छा करनेवाले दूसरे प्राणियोको सताता है, वह मरकर कभी सुख नही पाता।

न तेन अरियो होति येन पाणानि हिंसति।
अहिंसा सब्बपाणानं अरियो ति पवुच्चति ॥[४]

---

१ दण्डवग्गो १०।१। २. वही, १०।२। ३. वही, १०।३।
४. धम्मट्ठवग्गो १९।१५।

प्राणियोकी हिंसा करनेसे कोई आर्य नही होता । जो किसी प्राणीकी हिंसा नही करता, उसीको 'आर्य' कहा जाता है ।

वैरसे वैर नहीं मिटता : ५ :

अक्कोच्छि मं अवधि मं अजिनि मं अहासि मे ।
ये च तं उपनय्हन्ति वेरं तेसं न सम्मति ॥[1]

'उसने मुझे गाली दी', 'उसने मुझे मारा', 'उसने मुझे हराया', 'उसने मुझे लूटा'—जो अपने मनमे इस तरहकी बातो-की गाँठ बाँधे रहते हैं, उनका वैर कभी शान्त नही होता ।

अक्कोच्छि मं अवधि मं अजिनि मं अहासि मे ।
ये तं न उपनय्हन्ति वेरं तेसूपसम्मति ॥[2]

'उसने मुझे गाली दी', 'उसने मुझे मारा', 'उसने मुझे हराया', 'उसने मुझे लूटा'—जो अपने मनमे इस तरहकी बातो-की गाँठ नही बाँधे रहते, उनका वैर शान्त हो जाता है ।

दो सौते आपसमे डाह करती थी । कई जन्मोंतक वे एक-दूसरीसे बदला लेती रही । एक जनमी कन्या होकर, दूसरी काली यक्षिणी होकर । कन्या बड़ी हुई । शादी हुई । इसे जब-जब बच्चे होते, तो यक्षिणी आकर उन्हें खा डालती । एक बार संयोगसे जेतवनमे भगवान् बुद्ध विराजमान थे । पासमे ही बैठी वह स्त्री अपने बच्चेको दूध पिला रही थी । तभी आ गयी यक्षिणी । बच्चेको गोदमे लिये हुए माँ दौड़ी भगवान्के पास ।

---

१. यमकवग्गो ३ । २. वही, ४ ।

उनके चरणोमे बच्चेको डालकर वह बोली : "भन्ते ! इसे जोवनदान दीजिये ।"

भगवान्ने यक्षिणीको समझाकर उसका क्रोध शान्त किया । उन्होने कहा :

> न हि वेरेन वेरानि सम्मन्तीध कुदाचनं ।
> अवेरेन च सम्मन्ति एस धम्मो सनन्तनो ॥[१]

इस संसारमें वैरसे वैर कभी नही मिटता । वैर न करनेसे, मित्रता करनेसे वैर मिटता है—यही सनातन धर्म है । यही सदाका नियम है ।

> परदुक्खूपधानेन यो अत्तनो सुखमिच्छति ।
> वेरससग्गसंसट्ठो वेरा सो न पमुच्चति ॥[२]

जो कोई दूसरेको दु:ख देकर अपने लिए सुख चाहता है, वह वैरकी लपेटमें पड़ा जीव वैरसे कभी नही छूटता ।

---

१. यमकवग्गो ५ । २. किण्णकवग्गो २१।२ ।

वह अपनी जड़ खोदता है : ६ :

यो पाणमतिपातेति मुसावादं च भासति ।
लोके अदिन्नं आदियति परदारं च गच्छति ॥
सुरामेरयपानं च यो नरो अनुयुञ्जति ।
इधेवमेसो लोकस्मिं मूलं खणति अत्तनो ॥[1]

जो आदमी दूसरे प्राणियोंकी हिसा करता है, झूठ बोलता है, किसीकी चीज बिना दिये हुए लेता है, परायी स्त्रीके पास जाता है, शराब पीता है—वह इसी लोकमें अपनी जड़ खोदता है ।

चत्तारि ठानानि नरो पमत्तो आपज्जति परदारूपसेवी ।
अपुञ्ञलाभं न निकामसेय्यं निन्दं ततीय निरयं चतुत्थं ॥[2]

जो आदमी परायी स्त्रीका सेवन करता है, उसकी चार गतियाँ होती हैं : उसे पाप मिलता है, वह सुखसे सो नही पाता, ससारमे उसकी निन्दा होती है और उसे नरकमे जाना पड़ता है ।

अपुञ्ञलाभो च गती च पापिका भीतस्स भीताय रती च थोकिका ।
राजा च दण्डं गरुकं पणेति तस्मा नरो परदारं न सेवे ॥[3]

ऐसे पुरुषको अपुण्य मिलता है । बुरी गति होती है । पुरुष भी भयभीत रहता है, स्त्री भी । इस हालतमे मिलनेसे दोनोको बहुत थोडी देरका आनन्द मिलता है । राजा उसे भारी दण्ड देता है । इसलिए परायी स्त्रीके पास कभी न जाय ।

---

१. मलवग्गो १८।१२-१३ । २. निरयवग्गो २२।४ । ३. वही, २२।५ ।

प्रेमसे क्रोधको जीतो

उत्तरा राजगृहके पूर्ण श्रेष्ठीकी बेटी थी। एक श्रेष्ठी-पुत्रसे उसका विवाह हुआ। उसका पति न तो दान करता था, न तथा-गतमे श्रद्धा रखता था। उत्तराके पिताने कुछ धन भेजकर उससे कहा : "नगरकी गणिका सिरिमाको कुछ दिनके लिए पतिकी सेवामे नियुक्त कर तुम पन्द्रह दिन पुण्यकर्म करो।"

उत्तरा भिक्षुसंघके लिए दानका प्रबन्ध करा रही थी। शरीरसे पसीना टपक रहा था। 'कैसी मूढ़ है यह उत्तरा !' ऐसा सोचकर ऊपरी छतपर खड़ा उसका पति हँसा। सिरिमाने सोचा कि श्रेष्ठी-पुत्र उत्तराको बहुत चाहता है। मैं उत्तराको पीड़ित करूँगी।

सिरिमा कलछीमे खौलता घी भर लायी और नीचे उतरकर

उत्तरापर डालने गयी। उत्तराने मैत्रीभावसे उसका स्वागत

किया। गरम घी उसे पानी-सा शीतल लगा। सिरिमा फिर जाकर घी कलछीमे भर लायी। दासियोने देखा, तो उन्होने उसे पकड़कर खूब पीटा। उत्तराने उन्हे रोककर तेलसे उसकी मालिश करायी, स्नान कराया।

सिरिमाको अपनी गलती महसूस हुई। उसने उत्तराके पैरोपर पड़कर क्षमा माँगी। उसने कहा : "भगवान्से क्षमा माँगो।"

दूसरे दिन भगवान् बुद्ध पधारे, तो सिरिमाने उनके चरणोपर गिरकर रोते-रोते सारी बात कह सुनायी। भगवान् बोले . धन्य है उत्तरा, क्रोधको इसी तरह प्रेमसे जीतना चाहिए :

अक्कोधेन जिने कोध असाधुं साधुना जिने।
जिने कदरिय दानेन सच्चेन अलीकवादिन॥[1]

अक्रोधसे क्रोधको जीते। असाधुको साधुतासे, भलाईसे जीते। कजूसको दानसे जीते। झूठेको सत्यसे जीते।

यो वे उप्पतितं कोध रथ भन्त व धारये।
तमहं सारथिं ब्रूमि रस्मिग्गाहो इतरो जनो॥[2]

जो आदमी उठते हुए क्रोधको इस तरह रोक लेता है, जिस तरह राहसे भटकते हुए रथको सारथी, उसीको मैं सच्चा सारथी कहता हूँ। दूसरे लोग तो लगाम थामनेवाले हैं।

सच्च भणे न कुज्झेय्य दज्जाप्पस्मिम्पि याचितो।
एतेहि तीहि ठानेहि गच्छे देवान सन्तिके॥[3]

---

१. कोधवग्गो १७।३। २. वही, १७।२। ३. वही, १७।४।

मन, वचन, कर्मका संयम करो : १० :

कायप्पकोप रक्खेय्य कायेन संवुतो सिया।
कायदुच्चरितं हित्वा कायेन सुचरितं चरे ॥[1]

शरीरके दुराचारसे मनुष्य अपनेको बचाये। अपने शरीरका संयम करे। शरीरका दुराचार छोड़कर सदाचारका पालन करे।

वची पकोप रक्खेय्य वाचाय संवुतो सिया।
वची दुच्चरितं हित्वा वाचाय सुचरितं चरे ॥[2]

वाणीके दुराचारसे मनुष्य अपनेको बचाये। अपनी वाणीका संयम करे। वाणीके दुराचारको छोड़कर सदाचारका पालन करे।

मनोपकोपं रक्खेय्य मनसा संवुतो सिया।
मनोदुच्चरितं हित्वा मनसा सुचरितं चरे ॥[3]

मनके दुराचारसे मनुष्य अपनेको बचाये। अपने मनका संयम करे। मनके दुराचारको छोड़कर सदाचारका पालन करे।

कायेन संवुता धीरा अथो वाचाय संवुता।
मनसा संवुता धीरा ते वे सुपरिसंवुता ॥[4]

जो बुद्धिमान् लोग शरीरको संयममें रखते हैं, वाणीको संयममें रखते हैं, मनको संयममें रखते हैं, वे ही पूरे तौरसे संयमी माने जाते हैं।

---

१. कोधवग्गो १७।११। २ वही, १७।१२। ३. वही, १७।१३। ४. वही, १७।१४।

ब्रह्मचर्यका पालन करो : ११ :

अचरित्वा ब्रह्मचरियं अलद्धा योब्बने धनं।
जिण्णकोञ्चा व झायन्ति खीणमच्छे व पल्लले ॥[1]

जो लोग ब्रह्मचर्यका पालन नही करते और जवानीमें धन नही जुटाते, वे उसी तरह नष्ट हो जाते हैं, जिस तरह मछलियों-से रहित तालाबमे बूढ़े क्रौंच पक्षी ।
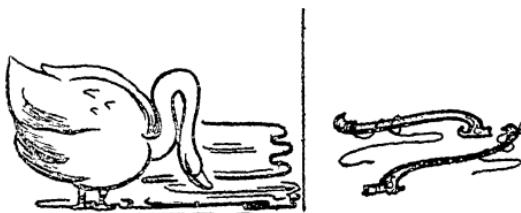
अचरित्वा ब्रह्मचरियं अलद्धा योब्बने धनं।
सेन्ति चापातिखित्ता व पुराणानि अनुत्थुनं ॥[2]

जो लोग ब्रह्मचर्यका पालन नही करते और जवानीमे धन नहीं जुटाते, वे धरतीपर उसी तरह गिर पडते हैं, जैसे टूटी हुई कमाने । पुरानी बाते कह-कहकर वे पछताते रहते हैं ।

तृष्णाका बन्धन : १२ :

न तं दल्ह बन्धनमाहु धीरा यदायसं दारुजं बब्बज च।
सारत्तरत्ता मणिकुण्डलेसु पुत्तेसु दारेसु च या अपेक्खा ॥[3]

लोहेका बन्धन हो, लकड़ीका बन्धन हो, रस्सीका बन्धन हो, इसे बुद्धिमान् लोग बन्धन नही मानते । इनसे कड़ा बन्धन

---

१. जरावग्गो ११।१० । २. वही, ११।११ । ३. तण्हावग्गो २४।१२ ।

तो है, सोनेका, चादीका, मणिका, कुण्डलका, पुत्रका, स्त्रीका।

सरितानि सिनेहितानि च सोमनस्सानि भवन्ति जन्तुनो।
ते सोतसिता सुखेसिनो ते वे जातिजरूपगा नरा॥[1]

तृष्णाकी नदियाँ मनुष्यको बहुत प्यारी और मनोहर लगती हैं। जो इनमे नहाकर सुख खोजते हैं, उन्हें बार-बार जन्म, मरण और बुढापेके चक्करमे पडना पडता है।

दान दो : १३ :

न वे कदरिया देवलोकं वजन्ति बालाह वे न प्पससन्ति दानम्।
धीरो च दानं अनुमोदमानो तेनेव सो होति सुखी परत्थ॥[2]

कंजूस आदमी देवलोकमें नही जाते। मूर्ख लोग दानकी प्रशंसा नही करते। पण्डित लोग दानका अनुमोदन करते हैं। दानसे ही मनुष्य लोक-परलोकमें सुखी होता है।

---

१. तण्हावग्गो २४।८। २. लोकवग्गो १३।११।

प्रमाद मत करो : १४ :

मा पमादमनुयुञ्जेथ मा कामरतिसन्थवं ।
अप्पमत्तो हि झायन्तो पप्पोति विपुल सुख ॥[1]

प्रमादमे मत फॅसो । भोग-विलासमे मत फॅसो । कामदेवके चक्करमें मत फॅसो । प्रमादसे दूर रहकर ध्यानमे लगनेवाला व्यक्ति महान् सुखको प्राप्त करता है ।

अप्पमादो अमतपदं पमादो मच्चुनो पदं ।
अप्पमत्ता न मीयन्ति ये पमत्ता यथा मता ॥[2]

प्रमाद न करनेसे, जागरूक रहनेसे अमृतका पद मिलता है, निर्वाण मिलता है । प्रमाद करनेसे आदमी बे-मौत मरता है । अप्रमादी नही मरते । प्रमादी तो जीते हुए भी मरे जैसे हैं ।

स्थविर, पण्डित, भिक्षु : १५ :

यम्हि सच्चं च धम्मो च अहिंसा संयमो दमो ।
स वे वन्तमलो धीरो सो थेरो ति पवुच्चति ॥[3]

जिस मनुष्यमें सत्य है, धर्म है, अहिसा है, सयम है, इन्द्रियोका दमन है, सच पूछा जाय तो उसीका मल नष्ट हुआ है । वही धीर है, वही स्थविर है ।

न तेन पण्डितो होति यावता बहु भासति ।
खेमी अवेरी अभयो पण्डितो ति पवुच्चति ॥[4]

बहुत बोलनेसे कोई पण्डित नही होता । पण्डित तो वह है,

---

१. अप्पमादवग्गो २।७ । २. वही, २।१ । ३. धम्मवग्गो १९।६ । ४. वही, १९।३ ।

जो दूसरोका कल्याण करता है, किसीसे वैर नही करता और किसीसे डरता नही ।

हत्थसयतो पादसंयतो
वाचाय संयतो संयतुत्तमो ।
अज्झत्तरतो समाहितो
एको सतुसितो तमाहु भिक्खुं ॥[१]

जिसका हाथ सयममे है, पैर सयममे है, वाणी सयममें है, जो उत्तम सयमी है, जो अध्यात्ममें रत है, समाधियुक्त है, अकेला है, सतुष्ट है, उसे कहते हैं—'भिक्षु' ।

यस्सिन्द्रियानि समथ गतानि
अस्सा यथा सारथिना सुदन्ता ।
पहीनमानस्स अनासवस्स
देवा पि तस्स पिहयन्ति तादिनो ॥[२]

जिसकी इन्द्रियाँ इस तरह शान्त हो गयी हैं, जैसे सारथी द्वारा दमन किये गये घोड़े, जिसमें अभिमान नही रह गया, जिसके चित्तके मल नष्ट हो गये हैं, ऐसे अर्हतकी देवता भी चाह करते हैं ।

ब्राह्मण वह है : १६ :

न जटाहि न गोत्तेहि न जच्चा होति ब्राह्मणो ।
यम्हि सच्च च धम्मो च सो सुची सो च ब्राह्मणो ॥[३]

ब्राह्मण न तो जटासे होता है, न गोत्रसे और न जन्मसे । जिसमे सत्य है, धर्म है और जो पवित्र है, वही ब्राह्मण है ।

---

१. भिक्खुवग्गो २५।३ । २. अर्हतवग्गो ७।५ । ३. ब्राह्मणवग्गो २६।११ ।

किं ते जटाहि दुम्मेध ! किं ते अजिनसाटिया ।
अब्भन्तरं ते गहनं बाहिर परिमज्जसि ॥[1]

अरे मूर्ख ! जटाओसे क्या ? मृगचर्म पहननेसे क्या ? भीतर तो तेरा हृदय अन्धकारमय है, काला है, ऊपरसे क्या धोता है ?

अकिंचनं अनादानं तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥[2]

जो अकिंचन है, किसी तरहका परिग्रह नहीं रखता, जो त्यागी है, उसीको मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

वारि पोक्खरपत्ते व आरग्गे रिव सासपो ।
यो न लिम्पति कामेसु तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥[3]

कमलके पत्तेपर जिस तरह पानी अलिप्त रहता है या आरेकी नोकपर सरसोंका दाना, उसी तरह जो आदमी भोगोंसे अलिप्त रहता है, उसीको मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

निधाय दण्डं भूतेसु तसेसु थावरेसु च ।
यो न हन्ति न घातेति तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं ॥[4]

चर या अचर, किसी प्राणीको जो दण्ड नहीं देता, न किसीको मारता है, न किसीको मारनेकी प्रेरणा देता है उसीको मैं ब्राह्मण कहता हूँ ।

●

---

१. ब्राह्मणवग्गो २६।१२ । २. वही, २६।१४ । ३. वही, २६।१९ । ४. वही, २६।२३ ।

धर्म क्या कहता है ?

लेखक : श्रीकृष्णदत्त भट्ट

धर्म मानव-जीवनकी आधार-शिला है। मानवके विकासमे, उसकी उन्नतिमे धर्मका बहुत बड़ा स्थान है। भिन्न-भिन्न धर्मोके ऊपरी आचारोमें हमे अन्तर दिखाई पडता है अवश्य, पर हम उनके भीतर घुसकर देखे, तो पता चलेगा कि सभी धर्मोके हृदयसे एक ही त्रिवेणी प्रवाहित हो रही है : सत्य, प्रेम और करुणाकी।

हमारी 'धर्म क्या कहता है ?'—पुस्तक-मालामें भिन्न-भिन्न धर्मोंका सरल और रोचक परिचय दिया गया है—हर स्त्री-पुरुप, बालक-वृद्धके लिए आवश्यक, हित, मनोहारि !

१. धर्मोंकी फुलवारी (सब धर्मोंकी सामान्य जानकारी)
२–४. वैदिक धर्म क्या कहता है ? (तीन भाग)
५. जैन धर्म क्या कहता है ?
६. बौद्ध धर्म क्या कहता है ?
७. पारसी धर्म क्या कहता है ?
८. यहूदी धर्म क्या कहता है ?
९. ताओ और कनफ्यूश धर्म क्या कहता है ?
१०. ईसाई धर्म क्या कहता है ?
११. इस्लाम धर्म क्या कहता है ?
१२. सिख धर्म क्या कहता है ?

हर पुस्तककी पृष्ठ-संख्या लगभग ८० और मूल्य ७५ पैसे।

सर्व सेवा संघ प्रकाशन

राजघाट, वाराणसी-१